हिन्दी धातुकोश

लेखक
डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव

श्री गंगाप्रसाद बिस्सा स्मृति संस्थान,
बीकानेर द्वारा
शिक्षा एवं संस्कृति प्रचार योजना में
प्रदत्त भेंट

एकमात्र वितरक
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
१९८०

प्रकाशक
शब्द-लोक प्रकाशन
वाराणसी

वितरक
जीत मल्होत्रा
रचना प्रकाशन
४५ ए, सराय खुल्दाबाद
इलाहाबाद–२११००१

मूल्य २५=००

मुद्रक
चन्द्रप्रकाश प्रेस
४७, लाजपत नगर
वाराणसी

शब्द-ब्रह्म के उपासक

आचार्य रामचन्द्र वर्मा की

पुण्य स्मृति में

लेखक की भाषा-सम्बन्धी अन्य कृतियाँ

हिन्दी तद्भवशास्त्र—कलाकार प्रकाशन, पटना—१६

शुद्ध अक्षरी कैसे सीखें ?—भारती भवन, पटना—१

एलिमेन्ट्स आफ हिन्दी ग्रामर—मोतीलाल बनारसीदास—वाराणसी

आमुख

हिन्दी के स्वरूप और प्रकृति के सम्यक् ज्ञान के लिये हिन्दी धातुओं और उनसे उत्पन्न शब्दों का जानना आवश्यक है। वस्तुतः वाक् या भाषा का विश्लेषण-विवेचन ही व्याकरण है। यह विचित्र बात है कि जब से हिन्दी व्याकरण लिखा जाने लगा, उस पर अँग्रेजी ग्रामर की सरणी का प्रभाव है। विदेशियों ने ही हिन्दी का व्याकरण पहले-पहल लिखा और उनकी पद्धति का प्रभाव परवर्ती सभी व्याकरण-लेखकों पर पड़ा। गत चालीस वर्षों में हिन्दी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन तो कई दृष्टियों से हुआ, पर व्याकरण-लेखन की पद्धति में विशेष अन्तर नहीं आया। गुरु के हिन्दी व्याकरण और श्रीकिशोरीदास के हिन्दी शब्दानुशासन के बाद हिन्दी व्याकरण में किसी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन नहीं हुआ, यद्यपि पाठ्यक्रम की पूर्ति के लिये अनेक व्याकरण लिखे गये। हिन्दी धातुओं पर भी पहला काम है एक विदेशी का—हॉर्नली का, जो आरम्भ में जयनारायण हाई स्कूल बनारस में अध्यापक थे। उन्होंने हिन्दी धातुओं का एक संग्रह जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल खंड ४६ में १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में निकाला था। १९५६ में इसका अनुवाद हिन्दी विद्यापीठ आगरा से निकला। हिन्दी के किसी वैयाकरण ने या भाषाशास्त्री ने हिन्दी धातुओं के अनुशीलन को आगे नहीं बढ़ाया और न इस कार्य के महत्त्व और प्रयोजन का अनुभव किया। यह 'हिन्दी धातुकोश' हिन्दी व्याकरण के प्रायः उपेक्षित अंग धातुविचार से सम्बन्धित एक लघुप्रयास है। लेखक इस कार्य में, धातु-संग्रह में उसी समय से लगा था, जब उसने हिन्दी तद्भव तत्त्व का अनुशीलन कर हिन्दी तद्भवशास्त्र १९६१ में लिखा था। बीच में शोधकार्य और अन्य व्यस्तताओं के कारण यह कार्य प्रकाशनीय रूप धारण नहीं कर सका। मुझे आज यह कोश हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हर्ष के साथ विषाद भी अनुभव हो रहा है, क्योंकि जिस कृति को देखकर सिद्ध शब्द योगी मूर्धन्य कोशकार श्री रामचन्द्र वर्मा जी ने रोग शय्या से स्नेह युक्त आशीर्वचन द्वारा लेखक का संवर्धन किया था, उसे वे अर्ध मुद्रित ही देख सके। उनके सुयोग्य भागिनेय डॉ० बदरीनाथ कपूर ने इनके प्रकाशन में विशेष उत्साह दिखलाकर उस परम्परा एवं दाय का निर्वाह किया। अब वर्मा जी की पुण्य स्मृति में यह कृति समर्पित कर लेखक अपने को कृतार्थ ...।

शब्दलोक प्रकाशन से इस पुस्तक का प्रकाशन लेखक के लिये गर्व और गौरव का विषय है।

धातुओं का संग्रह मुख्यतः हिन्दी शब्दसागर से किया गया है। उसमें ग्राम्य बोलियों की क्रियायें भी बहुत हैं, जिनमें अनेक शिष्ट हिन्दी में या नागरी हिन्दी में अब नहीं चलती हैं। जनपदी क्रियारूपों में सभी आधुनिक हिन्दी में नहीं चलते। अतः कुछ जनपदी क्रियाओं को 'स्थानीय' या आंचलिक मान कर इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया। जहाँतक मेरी जानकारी है हिन्दी में इतना बड़ा धातुसंग्रह नहीं हुआ है और प्रत्येक धातु की व्युत्पत्ति, स्वरूप और अर्थ-विस्तार पर इसके पूर्व इस प्रकार विचार नहीं किया गया है। मैं यह नहीं मानता कि हिन्दी के सभी शब्द धातुज हैं, पर धातुज शब्दों की संख्या बहुत है और धातुओं के ज्ञान से शब्दों के अर्थ को जानने-समझने में विशेष सुविधा होती है। धातु और प्रत्ययों के योग से शब्दों का गठन कैसे हुआ है, यह जानने से हिन्दी की प्रकृति का भी ज्ञान होता है। संज्ञापदों और पर्यायों की दृष्टि से हिन्दी अतिसमृद्ध भाषा है, किन्तु क्रियाओं की संख्या अधिक नहीं है। हिन्दी में सहायक क्रियाओं का पृथक् महत्त्व है। सहायक क्रियाओं के योग और उनके कारण अर्थभेद आदि पर विचार करना हमारा विषय नहीं है। अतः इसमें धातुओं का अनुशीलन करने के लिये ही धातुकोश प्रस्तुत किया गया है। अतः इसमें कोश से पूर्व दो विस्तृत निबन्ध पीठिका रूप में दे दिये गये हैं, जिनका इस पुस्तक के विषय से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। हमें विश्वास है कि इन निबन्धों से सुधी पाठकों को चिन्तन की नयी दिशा मिलेगी और हिन्दी के वैयाकरणिक अध्ययन में अभिरुचि जाग्रत होगी। मैंने इस विषय पर जो स्वतन्त्ररूप से चिन्तन-मनन किया है, उसको प्रस्तुत पुस्तक के रूप में रखते हुये यह आशा करता हूँ कि आगे इस दिशा में अधिक कार्य होगा और इस पथ के भावी पथिकों के लिये यह धातुकोश राजमार्ग का काम करेगा।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सं० २०२६
राजेन्द्र कॉलेज बिहार वि० वि० छपरा

—मुरलीधर श्रीवास्तव

विषयानुक्रम :



धातु का स्वरूप और अर्थ-विस्तार

संस्कृत वैयाकरणों का धातु-अनुशीलन

प्राचीन आर्यों में व्याकरण अति उन्नत शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित था। वैदिक साहित्य में वाक्, वाणी या भाषा-विषयक उच्च तत्त्वज्ञान मिलता है। नाद-तत्त्व, अक्षर-तत्त्व और अर्थ-तत्त्व इन सबके विशद विवेचन से यह ज्ञात होता है कि सुदूर प्राचीन युग में भी शब्दशास्त्र विकसित हो चुका था। व्याकरण वेदाङ्ग माना जाता था। यास्क के निरुक्त में भी अनेक पूर्ववर्ती शाब्दिकों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ से यह ज्ञात होता है कि उस काल के पूर्व भी शब्द और अर्थविषयक अनेक सिद्धान्त प्रचलित थे और वैयाकरणों के कई सम्प्रदाय थे। व्याकरण शब्द का अर्थ है, विश्लेषण या विभाजन। व्याकरण-शास्त्र में वाक्-तत्त्व का विश्लेषण किया जाता है। वाक्-तत्त्व प्रारम्भ में अव्याकृत था। देवों ने इन्द्र से प्रार्थना की कि इस वाक्-तत्त्व का आप व्याकरण (विवेचन) कर दें। इन्द्र ने उसका व्याकरण किया :[1]

वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति।
तामिन्द्रो मध्येऽवक्रम्य व्याकरोत्तस्मादियं व्याकृता वागुपपद्यते।
(तै० सं० ६, ४, ७)

व्याकरण क्या है, इसका उत्तर महाभाष्य, आन्हिक २ में इस प्रकार दिया गया है।

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते॥

ऋग्वेद (४,५८,३) मे एक मन्त्र आया है :

---

१. इन्द्र को ही वाक् का प्रथम वैयाकरण माना जाता है। वैयाकरणों में यह श्लोक प्रसिद्ध है :

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः।

अर्थात्, इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, और जैनेन्द्र इन आठ को प्रथम शाब्दिक कहा गया है।

चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥

इसकी व्याख्या पतञ्जलि के अनुसार इस प्रकार है : उस महान् देव-ब्रह्म—शब्द-ब्रह्म के चार सींग हैं, जिनको वैयाकरणों के शब्दों में नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात कहा जाता है। उसके तीन पैर हैं, वह काल-पुरुष है, उसके भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीन पैर हैं। उसके दो सिर हैं, अर्थात् दो स्वरूप हैं, एक नित्य और दूसरा अनित्य। उसके सात हाथ हैं, अर्थात् सात विभक्तियाँ हैं। वह तीन स्थानों पर बँधा हुआ है। वे स्थान हैं-हृदय, कण्ठ और सिर। इनमें शब्द-तत्त्व बद्ध और सम्बद्ध है। इसको वृषभ कहा जाता है, क्योंकि यह अर्थ-तत्त्व की वृष्टि करता है। इसके कारण ही ध्वनि की सत्ता है। यह महान् देव सब मनुष्यों में प्रविष्ट है। मर्त्य उस अमर अमर्त्य महान् देव का साम्य प्राप्त करने के लिए व्याकरण का आश्रय लेते हैं। व्याकरण के आश्रय से ही अन्तस्तल में प्रतिष्ठित आत्मतत्त्व के साथ सायुज्य की प्राप्ति होती है। (नागेश० महा० भा० १, श्रीकपिलदेव द्विवेदी, व्याकरण-दर्शन में उद्धृत)।

उक्त मन्त्र व्याकरण की गरिमा और महिमा प्राचीन आर्यों में किस रूप में प्रतिष्ठित थी, यह प्रमाणित करने के लिए यथेष्ठ है। यहाँ 'आख्यात' क्रिया के लिए ही आया है। वाग्ब्रह्म के उपासकों ने शब्द का ऐसा सम्यक् विवेचन किया है, मानों उन्हें इसका रहस्य ही मिल गया हो। व्याकरण को कितना गहन शास्त्र माना जाता है, यह पस्पशान्हिक की निम्नाङ्कित इन्द्र विषयक आख्यायिका से स्पष्ट हो जाता है :

एवं हि श्रूयते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः तथापि नान्तं जगाम। किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा जीवति वर्षशतं जीवति ॥

अर्थात्, शब्द-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए सारे शब्दों का प्रतिशब्द पारायण करना तो असम्भव है। यह सुना जाता है कि बृहस्पति ने इन्द्र को एक सहस्र दिव्य वर्षों तक प्रत्येक शब्द का पारायण कर अध्यापन कराया, परन्तु वे शब्दों का अन्त न पा सके। बृहस्पति जैसे प्रवक्ता तथा इन्द्र जैसे अध्येता भी जब दिव्य सहस्र वर्षों तक अध्ययन करके शब्दों का अन्त न पा

सकें, तब आज अधिक-से-अधिक सौ वर्ष तक जीवित रहनेवाले लोगों में कोई शब्दों का अन्त पा लेगा, इसकी आशा तो दुराशामात्र है। (पं० श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी)

प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा में एक श्लोक में पद के चार भेदों का लक्षण इस प्रकार किया गया है :

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत् ।
सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः ॥

क्रियावाचक को आख्यात, क्रिया के विशेषक को उपसर्ग और सत्त्ववाचक को नाम तथा पादपूरक को निपात कहते हैं। वेङ्कटमाधव के अनुसार आख्यात और नाम स्वार्थदर्शी हैं और उपसर्ग तथा निपात स्वतन्त्र नहीं हैं :

आख्यातस्य च नाम्नश्च सम्बन्धाः स्वार्थदर्शिनः ।
उपसर्गा निपाताश्च न स्वतन्त्राः इति स्थितिः ॥ (अष्टक २,१)

इन चारों भेदों में भी नाम और आख्यात मुख्य माने जाते हैं। पद के इन दो भेदों को ही पाणिनि ने अधिक महत्त्व दिया है। 'सुप्तिङन्तं पदं' इसका सूचक है। पद के चार उक्त भेदों को पतञ्जलि भी स्वीकार करते हैं, यह 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि'[१] की व्याख्या से स्पष्ट है। निरुक्त का भी यही मत है—'नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः' नाम और आख्यात में जो अन्तर किया गया है, वह प्रधानता की दृष्टि से; आख्यात में क्रिया की प्रधानता और नाम में द्रव्य (सत्त्व) की प्रधानता मानी जाती है। यास्क का मत है कि क्रिया में भी द्रव्य रहता है और द्रव्य में भी क्रिया रहती है। संज्ञा का प्रयोग क्रिया के रूप में देखा जाता है और कृदन्त से संज्ञा बन जाती है। नाम का धातु के समान प्रयोग होता है—नामधातु। नाम और आख्यात में अन्तर केवल इतना ही है कि जब क्रिया की प्रधानता होती है, तब क्रिया को आख्यात, अर्थात् तिङ् प्रत्ययों के द्वारा बोधित किया जाता है। उसे ही तिङन्त पद कहते हैं। जब द्रव्य और क्रिया में द्रव्य को मुख्यता दे दी जाती है, तब क्रिया का अंश गौण पड़ जाता है और द्रव्य-अंश की मुख्यता का बोध सुप् प्रत्ययों के द्वारा कराया जाता है, उसे सुबन्त पद कहते हैं।'

१. व्याकरण को दर्शन के रूप में उपस्थित करनेवाले भर्तृहरि [illegible] गौडपाद आदि वैयाकरणों ने 'चत्वारि वाक्परिमिता' का अर्थ वा[illegible] रूप परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ग्रहण किये हैं। भाषा रूप ही समाज में प्रचलित है।—ले०

पाणिनि[1] के पूर्व के उल्लिखित आचार्यों के ग्रन्थ अब प्राप्त नहीं होते। परन्तु उनके पूर्व शब्दशास्त्र का विकास हो चुका था और अष्टाध्यायी की पूर्णता और व्यापकता के कारण ही अन्यों द्वारा रचित व्याकरण अप्रचलित हो गये। पं० श्रीगिरिधर शर्मा कहते हैं कि इन्द्र, आपिशलि, काशकृत्स्न आदि शाब्दिक थे, वैयाकरण नहीं। शाब्दिक और वैयाकरण में कदाचित् वैसा ही भेद है, जैसा आज भाषाशास्त्री और वैयाकरण में माना जाता है। निरुक्तकार यास्क का उद्देश्य वैदिक शब्दों के अर्थ को विवृत करना था, व्याकरण लिखना नहीं। अतः, उसका ग्रन्थ व्याकरण का पूर्ण ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, वह तो वेदों में प्रयुक्त अनेक शब्दों का निर्वचन-मात्र करता है। पाणिनि ने एक विस्तृत धातुपाठ दिया है और वे धातु से शब्द-निर्वचन की पद्धति को स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि अधिकांश शब्द धातुज हैं। पर, कुछ शब्दों के प्रयोग के लिए वे लोक-प्रमाण को भी स्वीकार करते हैं तथा ऐसे शब्दों को 'यथोपदिष्ट' कहते हैं। उणादि प्रत्ययों को वे स्वीकार करते हैं, पर उनके विस्तार में वे नहीं पड़ते। सूत्रकार-रूप में पाणिनि इतने प्रतिष्ठित हुये कि कात्यायन और पतञ्जलि ने उन्हें श्रद्धा से भगवान् कहा है: 'भगवतः पाणिनेः सिद्धम् (कात्यायन); भगवतः पाणिनेः पराचार्येण सिद्धम् (पतञ्जलि)।' वे व्याकरण के प्रमाणभूत आचार्य के रूप में स्वीकृत हुये। परवर्ती वैयाकरणों ने वार्तिक, भाष्य, काशिका आदि की रचना कर पाणिनीय परम्परा का विकास किया। पाणिनि के अनुसार धातु-प्रत्यय के योग से शब्दों की रचना हुई है। शब्दों के अध्ययन में इस पद्धति से विशेष लाभ हुआ। व्याकरण में धातुपाठ का महत्त्व अधिक रहता है। पाणिनीय धातुपाठ के अतिरिक्त कई अन्य धातुपाठ भी मिलते हैं। धातु का ज्ञान हो जाने पर शब्दार्थ जानने में सरलता होती है। धातु वह अक्षर-तत्त्व है, जो अनेक सदृश शब्दों के मूल में वर्तमान रहता है और जिसका अर्थ उससे बने उन सभी शब्दों में भी निहित रहता है।

जिस प्रकार सांख्य में प्रकृति को जगत् का मूल कारण कहा गया है, उसी प्रकार शब्दों का मूल कारण भी प्रकृति है। अतः, भाषा का मूल तत्त्व प्रकृति है। शब्दशक्ति प्रकाशिका, १४ में कहा गया है—निरुक्ताः प्रकृतेर्द्वेधा नाम-धातुप्रभेदतः। अर्थात्, प्रकृति के दो भेद किये गये हैं—नाम और धातु। पर, यह भेद उचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वैयाकरणों ने नाम को भी

१. पाणिनि शालातुरीय और दाक्षीपुत्र नाम से प्रसिद्ध हैं। शलातुर ग्राम ओहिन्द के पास गान्धार में है।—ले०

धातुज माना है। आधुनिक भाषाशास्त्री धातु को एक प्रकार का 'फ़ोनैटिक टाइप' मानते हैं, जो एक साथ सम्बन्ध रखनेवाले शब्दों के समूह का प्रतिनिधित्व करती है; जैसे भवति, भवानि, भविष्यामि इन तीनों का सम्बन्ध भू धातु से है। धातुपाठ की कुछ धातुयें देखने में संज्ञा-सी लगती हैं, जैसे धन्, जन्, वध्, मन्, गवेष्, कुमार् आदि। संस्कृत में धातुएं एकाक्षरी अधिक हैं, त्रिव्यंजन धातुओं की संख्या कम है; जैसे चकासृ दीप्तौ, कुमार् क्रीडायाम्। कुछ धातुओं में अन्तिम वर्ण में द्वित्व है; जैसे कुक्क्, कुट्ट्, भट्ट्, घट्ट् आदि। धातुपाठों में लगभग दो सहस्र धातुयें हैं, पर लौकिक संस्कृत में लगभग एक हजार का ही प्रयोग हुआ। कुछ ऐसी धातुयें भी हैं, जो देखने में समान हैं, पर उनके अर्थ में अन्तर है; जैसे कृत् छेदने, कृत् वेष्टने, क्लिश् उपतापे, क्लिश् विबाधने, कृष् विलेखने, कृष् कर्षणे, स्तम्भ् प्रतिबन्धने, स्तम्भ् रोधने धारणे च।

धातु पर स्वतंत्र पुस्तकों का भी उल्लेख मिलता है : यथा धातुपारायण, धातुप्रदीप आदि। पाणिनीय धातुपाठ पर धातुवृत्ति नाम की माधव की टीका है। ऊपर लिखा जा चुका है कि धातुओं के दो भेद स्वरों की संख्या के अनुसार हैं—(१) एकाच् * और (२) अनेकाच्। गणभेद के अनुसार भी धातुओं का वर्गीकरण हुआ है—भ्वादि, दिवादि चुरादि आदि। परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी धातुओं के भेद प्रसिद्ध ही हैं। धातुओं के तीन वर्ग इस प्रकार भी बनाये गये हैं :

(१) धातुपाठ में उल्लिखित धातुयें।

(२) सौत्र धातुयें, जो केवल सूत्रों में पाई जाती हैं।

(३) प्रत्ययान्त धातुयें। इस वर्ग के ही अन्तर्गत णिजन्त, यङन्त, नामधातु और सनन्त धातुएं आती हैं।

सौत्र धातुओं की संख्या बहुत कम है। वोपदेव ने वैदिक धातुओं के अतिरिक्त एक वर्ग लौकिक धातुओं का बतलाया है। हिन्दोल्, आन्दोल्, प्रेङ्खोल् आदि लौकिक धातुएं हैं (शब्दशक्तिप्रकाशिका)। कुछ वैदिक धातुओं का बाद में व्यवहार नहीं मिलता। भ्रम्, उह्, तु, तुर्, त्वक्ष् आदि ऐसी ही धातुयें हैं।

पाणिनि ने यह दिखलाया है कि कुछ प्रतिपादिक भी धातु का कार्य करने लगते हैं। पटयति 'पटु' नाम से बनता है (पटु के समान व्यवहार करता है)।

* अच = स्वर।

अश्वयति 'अश्व' से बनता है (घोड़े पर सवार होता है)। कुछ धातुओं को मत्र्य भाषाशास्त्री अनुकरणात्मक मानते हैं; यथा गद्, गर्ज्, कर्द्। संस्कृत वैयाकरण संयुक्त धातु नहीं मानते। परन्तु, आधुनिक भाषाशास्त्री ऐसा मानते हैं कि युध् संयुक्त धातु है—यु और ध के योग से युध् बनता है। केवल प्रत्ययान्त धातुयें ही संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार संयुक्त हैं।

धात्वर्थ-विचार

अब विचारणीय है कि धात्वर्थ क्या है? धातु में क्रिया निहित रहती है या क्रिया धातु का फल है? वैयाकरणों ने प्रायः धात्वर्थ से क्रिया का अर्थ ग्रहण किया है। नागेश ने मञ्जूषा में धातु का अर्थ क्रिया है—फलानुकूलो यत्नसहितो व्यापारः। वैयाकरणभूषण (कौण्ड) में लिखा है—फलव्यापार-योर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः। धातु के दो अर्थ होते हैं—(१) क्रिया का फल और (२) व्यापार। फल का आश्रय है कर्म और व्यापार का आश्रय है कर्त्ता। फल उसे कहते हैं, जो व्यापार से उत्पन्न होनेवाला हो और कर्तृवाच्य में व्यापार का विशेषण बनकर रहता हो। व्यापार विशेष्य होता है। कर्मवाच्य में फल विशेष्य होता है। व्यापार का अर्थ है धातु के अर्थरूप फल का जनक होते हुए धातु का वाच्य होना। नागेश के अनुसार 'फलानुकूलो व्यापार एव धात्वर्थः।' इस पर गदाधर का आक्षेप है कि यदि धातु से केवल व्यापार सूचित होता है, तो 'पचति' और 'गच्छति' का अर्थ केवल 'पकाता है' और 'जाता है' होना चाहिये। 'पचति' का अर्थ है 'पाकं करोति'। सभी धातुओं का अर्थ 'करोति' के अर्थ से सम्बन्ध रखता है: सर्वधात्वर्थं करोत्यर्थेनाभि-सम्बध्यते। ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसमें करोति क्रिया का अर्थ निहित न हो। पतंजलि ने धातु को क्रिया का वाचक माना है: क्रियावचनो धातुः। क्रिया का अर्थ है ईहा, ईहा का अर्थ है चेष्टा, चेष्टा का अर्थ है व्यापार। प्रत्येक क्रिया में ईहा या चेष्टा का होना आवश्यक है। वैयाकरणभूषण के अनुसार धातु फल और व्यापार दोनों की सूचक है। इसके लेखक के अनुसार तिङ् से आश्रय सूचित होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार तिङ् से व्यापार, काल, वचन और कारक का ज्ञान होता है।

यास्क का कथन है कि नैरुक्तों ने और शाकटायन ने भी यह माना है कि सब प्रकार के शब्द धातुज हैं।[१] पर, गार्ग्य का कथन है कि सभी शब्दों

१—नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्। यन्न विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्। (महाभाष्य, ३।३।१) नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके। (निरुक्त, १।१२)

की उत्पत्ति धातुओं से नहीं हुई है। कुछ विद्वानों का कथन है कि यदि नाम धातु से निकले हैं, तो उन सभी पदार्थों के नाम एक ही होने चाहिये, जो एक ही धातु से निकले हैं। अश् धातु के अर्थानुसार तो उन सबको अश्व कहना चाहिये, जो पथ पर चलते हों; पर व्यवहार में अश्व तो पशुविशेष का ही वाचक है। यदि प्रथन् (फैलाना) से पृथिवी शब्द बना, तो पृथिवी नाम पड़ने के पहले इसका क्या नाम होगा ? पर, इन शंकाओं के उत्तर में यह तो कहा ही जा सकता है कि अश्व में अश् का और पृथिवी में प्रथन् का भाव निहित है। यास्क ने शाकटायन के मत का समर्थन किया है और सभी शब्दों को धातुज सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया है। यास्क ने व्यक्तिवाचक नामों को भी धातु से निष्पन्न दिखलाने का प्रयास किया है। एक ही शब्द का अनेक धातुओं से सम्बन्ध भी जोड़ा गया है। यास्क ने वैदिक नामों की निरुक्ति इसी प्रकार बतलाई है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी इस रीति से अनेक नामों का विवेचन किया गया है। पाणिनि ने प्रातिपदिक के दो भेद किये हैं—व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न। जिसे वे व्युत्पन्न कहते हैं, उसे ही यास्क समविज्ञात कहते हैं। दुर्गसिंह ने शब्दों के तीन वर्ग किये हैं—(१) प्रत्यक्ष क्रिया (जिनकी क्रिया स्पष्ट लक्षित होती है; जैसे कारक, हारक आदि), (२) प्रकल्प्य क्रिया (जहाँ क्रिया की कल्पना की जाती है; जैसे गो, पुरुष आदि) और (३) अविद्यमान क्रिया (जैसे चन्द्र आदि)। पाणिनि व्युत्पन्न उसे कहते हैं, जिसका उच्चारण व्याकरण के मूल-प्रत्यय-नियमानुसार होता है। 'उणादयो बहुलम्' सूत्र से वह यह बताना चाहते हैं कि उणादि प्रत्यय व्याकरण के सामान्य नियमों के अनुकूल नहीं हैं। ये प्रत्यय बहुत कम शब्दों में जुड़ते हैं। रूढ़ शब्दों की उत्पत्ति आदि प्रत्ययों द्वारा बतायी जाती है। पतञ्जलि का कथन है कि नैगम और रूढ़ शब्द, जिनमें उणादि प्रत्यय लगते हैं, साधु शब्द हैं नैगमं रूढभवं सुसाधु। शिष्टों के शब्दों को भी प्रमाण माना गया है शिष्टाः शब्देषु प्रमाणम्। कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति ठीक से बताने में वैयाकरण भी असमर्थ हो गये। दुर्गसिंह ने कहा है कि मैं और भाष्यकार भी शब्दाम्बुधि को पार नहीं कर सके :

अहं च भाष्यकारश्च कुशाग्रकधियावुभौ।
नैव शब्दाम्बुधेः पारं किमन्ये जडबुद्धयः॥

ऊपर बताया जा चुका है कि 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र से पाणिनि ने नाम और आख्यात को ही महत्त्व दिया है। हेलाराज ने भी संज्ञा और क्रिया को

ही प्रमुख माना है। निपात का नाम के और उपसर्ग का आख्यात के साथ विचार हो सकता है। हेलाराज का मत है कि आख्यात के अन्तर्गत तिङन्त ही नहीं, वे अन्य शब्द भी आते हैं, जो क्रियाप्रधान हैं : 'नहि तिङन्तमेवाख्यातं क्रियाप्रधानस्य सर्वस्यैव तल्लक्षणात्।' सर्वनाम को इस वर्गीकरण में स्थान नहीं दिया गया। सर्वनाम भी एक प्रकार का नाम ही है। 'सर्वाणि नामानि यस्य, सर्वनाम्ना गणः एतेन सर्वनाम्ना। सर्वस्येन नाम सर्वनाम—दुर्ग।' सर्वनाम किसी नाम के लिए ही आते हैं। क्रियाविशेषण का भी स्वतन्त्र उल्लेख न होने का कारण यही है। विशेषण स्वतन्त्र पद नहीं माना जा सकता, चाहे वह विशेषण नाम का हो या क्रिया का। क्रियाविशेषण क्रियार्थ में कुछ विशेषता-मात्र बतलाते हैं, अतः उन पर स्वतन्त्र रूप से विचार आवश्यक नहीं समझा गया। 'क्रियाविशेषका उपसर्गाः', यहाँ भी क्रिया-विशेषक शब्द उपसर्ग के विशेषण रूप में आया है। इससे सूचित होता है कि क्रियाविशेषण शब्द पदविशेष के रूप में या पारिभाषिक शब्द के रूप में प्राचीनों को मान्य नहीं था। 'सामान्ये नपुंसकम्' के अनुसार क्रियाविशेषण को नपुंसकलिंग माना जाता था। लिंग तो संज्ञा का होता है, क्रिया का कोई निश्चित लिंग नहीं होता।

यास्क ने आख्यात को भावप्रधान और नाम को सत्त्वप्रधान माना है : 'भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि।' भाव को कर्म, क्रिया और धात्वर्थ का समानार्थी माना गया है। भू धातु से भाव बना है, सत् से सत्त्व। प्रत्येक क्रिया में ईहा, चेष्टा या गति का होना आवश्यक है। स्था धातु पर यह शंका उठाई गई है कि यह भाव का सूचक नहीं, वरन् गति-निवृत्ति का सूचक है। परन्तु, हमारे मत में स्था (स्थित होने) में भी चेष्टा अवश्य है, गति प्रत्यक्ष भले न हो। क्रिया हम इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक क्रिया में 'करोति' का भाव किसी-न-किसी रूप में वर्तमान रहता है। चलति (चलता है), खादति (खाता है), पिबति (पीता है) आदि सभी क्रियाओं का सम्बन्ध किसी कर्म (काम) से है। वह चलने का काम करता है, वह खाने का काम करता है, वह पीने का काम करता है, इस प्रकार इन क्रियाओं की व्याख्या हम कर सकते हैं। कुछ-न-कुछ 'करने का भाव' उसमें छिपा ही रहता है। अतः, भावप्रधान को ही आख्यात कहा गया है। प्रत्येक नाम का सत्त्व (सत्ता) है। पतञ्जलि ने भाव के स्थान पर क्रिया का और सत्त्व के स्थान पर द्रव्य का प्रयोग किया है। पर वे 'भाववचनो धातुः' में भाव शब्द का भी प्रयोग

करते हैं। क्रिया के द्विवचन और बहुवचन रूप होते हैं, पर इससे क्रिया का दो होना या बहुत होना सूचित नहीं होता। क्रिया तो एक ही रहती है। पचतः, पचन्ति रूप कारक के कारण बनते हैं : 'क्रियां करोति इति कारकम्'। यदि 'पचति' है, तो पकानेवाला एक है, 'पचतः' है, तो पकनेवाले दो हैं और यदि 'पचन्ति' है, तो पकानेवाले बहुत हैं। पर, प्रत्येक अवस्था में पचाने की क्रिया एक ही है। व्यापार शब्द भी क्रिया के पर्याय-रूप में प्रयुक्त होता है। शक्ति कभी भाव के रूप में और कभी द्रव्य के रूप में व्यक्त होती है। कृत् प्रत्यय के योग से भाव द्रव्य भी हो जाता है; यथा पाकः। पच् धातु से 'पाकः' द्रव्य भी बना है, कृत् प्रत्यय के योग से।

उपसर्ग और निपात

पाणिनि के अनुसार निपात-वर्ग के अन्तर्गत ही उपसर्ग भी रखे जा सकते हैं। प्र, परा आदि निपात हैं, पर जब वे धातु के साथ जुड़ते हैं, उपसर्ग कहे जाते हैं : 'क्रियाविशेषक उपसर्गः।' भट्टोजि लिखते हैं : 'उपसर्गास्त्वर्थ-विशेषस्य द्योतकाः।' उपसर्ग अर्थविशेष के द्योतक हैं। धातु के साथ संयुक्त होने पर ही वे अर्थ के द्योतक होते हैं, वाचक नहीं होते।[१] पृथक् या स्वतन्त्र रहने पर उपसर्गों का कोई अर्थ नहीं होता, ऐसा शाकटायन का मत है। किन्तु, यास्क ने बीस उपसर्गों की सूची देकर उनका विशेष अर्थ भी बताया है। धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति। उपसर्गाः क्रियायोगे। उपसर्गों का क्रिया से योग होता है। उपसर्गों का क्या काम है, यह निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है :

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्त्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्यः उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

उपसर्ग-धातु के योग के बाद कभी-कभी नयी धातु बन जाती है। पूरे शब्द से फिर धातु का काम लिया जाता है। उपसर्ग धातु के पूर्व आते हैं।

---

१. कुछ वैयाकरण उपसर्ग को अर्थ का द्योतक, कुछ वाचक और कुछ सहकारी मानते हैं। अधिक वैयाकरण द्योतक ही मानने के पक्ष में हैं। ले०

वेदों में कुछ उपसर्ग बाद में भी आये हैं, अतः ऐसा कई विद्वानों का अनुमान है कि कदाचित् उस काल में उनका स्वतन्त्र प्रयोग होता होगा।

धात्वर्थ में भी लाघव और विस्तार हुआ है। धातुपाठ में दिये गये अर्थ को उपलक्षणमात्र मानकर उससे किंचित् भिन्न अर्थ भी कभी-कभी स्वीकृत किया जाता है। भू का सत्ता अर्थ के अतिरिक्त भट्टोजि ने उत्पन्न होना भी ग्रहण किया है। 'यागात् स्वर्गो भवति' में 'भवति' का अर्थ 'उत्पद्यते' किया है। उपसर्ग धात्वर्थ में विशेषता ला देते हैं : 'उपसर्गो विशेषकृत्'—(यजुः प्रातिशाख्य ८, ५४)। सिद्धान्तकौमुदी में, धात्वर्थ को उपसर्ग कहाँ खींचकर ले जाते हैं, इसे प्रहार, आहार, विहार, प्रतिहार आदि द्वारा दिखलाया गया है। ये सब 'हृ' धातु से बने हैं :

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारप्रतिहारवत् ॥

पुनः स्था से बने उत्थान, संस्थान, अनुष्ठान, निष्ठा आदि शब्दों को देखें। सोपसर्ग होने पर अकर्मक भी सकर्मक हो जाते हैं : 'अकर्मका अपि वै सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति।' अनु के योग से अकर्मक 'भवति' सकर्मक 'अनुभवति' बन जाता है।

पाणिनि ने निपात के अन्तर्गत च, वै आदि अव्यय, उपसर्ग, गति और कर्मप्रवचनीय को भी सम्मिलित किया है। यास्क ने निपात की निरुक्ति निपत (गिरना) से बताई है। वे इसके तीन भेद करते हैं :

१. उपमार्थक—इव, तु, चित्, नु।

२. कर्मोपसंग्रहार्थक—कर्म (अर्थ) के उपसंग्राहक। जिनके कारण दो या अधिक अर्थों का एकत्र संग्रह होता है। च, वा आदि समुच्चयवाचक निपात हैं।

३. पादपूरक—जो अर्थ के पूर्ण होने पर गद्य में वाक्यपूर्त्ति के लिए और पद्य में पादपूर्त्यर्थ आते हैं। वे निपात निरर्थक होते हैं; जैसे कम्, ईम्, इत्, उ।

नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात में निपात का धातु से प्रयोजन नहीं है। आख्यात का नाम के रूप में कभी-कभी प्रयोग होता है। हिन्दी में भी क्रिया के सामान्य रूप पढ़ना, बसना आदि का संज्ञा-रूप में प्रयोग होता है।

इससे इन्हें क्रियार्थक संज्ञा भी कहते हैं (गुरु)। कदाचित्, इन्हें संज्ञार्थक क्रिया कहना अधिक उपयुक्त है। वे वास्तव में क्रिया हैं, पर प्रयोग संज्ञा के रूप में होता है।

सदृश शब्दों के विश्लेषण और सम्यक् परीक्षण के बाद ही प्राचीन भाषा-विदों का सब में स्थित समान अक्षर-तत्त्व का ज्ञान हुआ होगा। धातु से शब्द बनते हैं, यह तथ्य अब पश्चिमी भाषाशास्त्री स्वीकार करने लगे हैं। यहाँ एक प्रश्न उठता है, क्या भाषा में पहले धातुयें बनी और बाद में नियमों द्वारा उनसे अनेक शब्द निष्पन्न हुये ? यह मत स्वीकार करें, तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि धातु से शब्द बनाने की ही, सुदूर अतीत में समाज के साधारण जन में विकसित व्याकरण-बुद्धि रही होगी। किन्तु, ऐसा सम्भव नहीं है। व्याकरण का उदय तो भाषा की प्रकृति के अनुशीलन के बाद ही सम्भव है। संस्कृत-व्याकरण व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप में मिलता है। प्रकृति-प्रत्यय-विवेक तो साधारण जन को नहीं होता, वह तो व्यवहार से ही समाज में भाषा सीखता है। अत., यही ठाक जान पड़ता है कि अनेक सदृश शब्दों के परीक्षण-विश्लेषण के फलस्वरूप ही भाषाविदों को यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि उनके मूल में एक ही अक्षर-तत्त्व विद्यमान हैं। इसी मूल तत्त्व को धातु माना गया है। अतः, धातु की कल्पना की गई। विद्वानो की कल्पना का भी आधार होना चाहिये। चाहे हम उसे कल्पना कहें या तर्कसिद्ध अनुमान, यह तो मानना ही होगा कि पठ् धातु बन जाने के बाद ही पठति, पठामि, पठिष्यामि, पाठ, पाठक आदि शब्द बनाये गये होंगे। संस्कृत वैयाकरणों में यह उक्ति प्रसिद्ध है : 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलं प्रत्ययः'। इसका अर्थ है कि सुप्-तिङ् लगाये बिना शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिये। बिना सुप्-तिङ् के शब्द चलते नहीं—इनके लगने पर ही ये पद कहलाते हैं। पद से चलने की ओर सङ्केत है। 'अपदं न प्रयुञ्जीत', अपद शब्द का प्रयोग न करे। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि धातु—केवल धातु रूप में—भाषा में नहीं चलती। 'नर' का संस्कृत में कोई अर्थ नहीं माना जाता। 'नरः, नरौ, नराः' का ही अर्थ होता है। धातु का जो अर्थ दिया जाता है, वह उससे बने शब्दों के आधार पर ही निकाला जाता है। कुछ ऐसी धातुयें भी हैं, जिन्हें अनु-करणात्मक या ध्वन्यात्मक कह सकते हैं। ऐसी धातुयें कम ही हैं। कहा जाता है कि बन में पत्तों के गिरने से 'पत्' शब्द होता है, अतः 'पत्' अनुकरणात्मक धातु है। 'कू कूजने' भी पक्षियों के कलरव का सूचक होने से अनुकरणात्मक धातु है। किन्तु, कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों के आधार पर ही भाषा के जन्म और स्वरूप का कारण नहीं बताया जा सकता। इस सिद्धान्त से कुछ शब्दों

के कारण का ही अनुमान हो सकता है। भर्तृहरि ने शब्द के अर्थ पर विचार कर कहा है कि शब्द मे प्रत्येक वर्ण का अर्थ नहीं होता, वर्णों का समुदाय सार्थक होता है। कूप, यूप, सूप में क् य् स् तथा ऊप का पृथक् अर्थ नहीं होता। अन्वय-व्यतिरेक से ही यह ज्ञात होता है कि प्रकृति का कितना अर्थ है और प्रत्यय का कितना। इस प्रकार, विश्लेषण अथवा 'व्याकरण' से धातु का ज्ञान प्राप्त हुआ। यह रहस्य-ज्ञान आर्यों को प्राचीन काल में ही हो गया था। उपनिषदों, ब्राह्मणों, पुराणों और महाभारत आदि में स्थान-स्थान पर नामों के अर्थ करने में, निर्वचन मे शब्द के विश्लेषण करने और कभी-कभी एक-एक अक्षर का अर्थ करने की प्रवृत्ति दीखती है। धातुओं के ज्ञान के बिना व्याकरण का प्रयोजन ही पूरा नही होता।

अब तक हिन्दी मे व्याकरण-नामधारी जो ग्रन्थ रचे गये हैं, वे प्राचीन अर्थ में भाषा का 'व्याकरण' नहीं करते, वे तो अंग्रेजी के ढग पर रचे गये हिन्दी के 'ग्रामर' हैं। हिन्दी-व्याकरणों मे धातु पर विचार नहीं किया गया, न धातु-निर्णय का प्रयत्न दीखता है और न धातुकोश-निर्माण की आवश्यकता का ही किसी ने अनुभव किया। श्रीकामताप्रसाद गुरु ने अपने 'हिन्दी-व्याकरण' में इसको महत्व नहीं दिया। श्रीकिशोरीदास वाजपेयी ने 'हिन्दी-निरुक्त' मे व्युत्पत्ति पर कुछ ध्यान दिया। 'हिन्दी-शब्दानुशासन' मे भी धातुपाठ या धातु-कोश बनाने का प्रयत्न नहीं दीखता है, यद्यपि वे इसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं। हमारे विचार मे धातु-अनुशीलन की बड़ी आवश्यकता है और इस क्षेत्र में भाषाप्रेमियो का श्रम अपेक्षित है।

हमने ऊपर संस्कृत-व्याकरण मे धातु, आख्यात आदि के सम्बन्ध में जो विचार हुये हैं, उनकी ओर संकेत-मात्र किया है तथा इस सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञातव्य है, उसका संक्षेप में उल्लेख इसलिए किया है कि उक्त विवेचन के प्रकाश में हमें हिन्दी-धातुओं के स्वरूप और प्रवृत्ति को समझने-समझाने में सहायता मिलती है। आशा है, संस्कृत-व्याकरण के विद्वान् इस महत्वपूर्ण विषय पर अपने अधिक सुचिन्तित ज्ञान मे विवेच्य विषय के अनुशीलन मे सहायता देंगे।

[२]

हिन्दी धातुओं का अनुशीलन

हम ऊपर कह चुके हैं कि भाषाशास्त्रियों के अनुसार सदृश शब्दों मे समान रूप से प्राप्त अक्षर-तत्त्व की ही संज्ञा धातु है, जैसे भवति, भवानि, भविष्यामि

आदि का मूल अक्षर-तत्व भू धातु है। हिन्दी का उदाहरण लें, तो कह सकते हैं कि करें (कर्+एं), करूँ (कर्+ऊँ), करो (कर्+ओ), करूँगा, (कर्+ऊँ+गा) आदि में समान रूप से कर् है, अतः कर् हिन्दी-धातु है। कुछ लोग कर् को नहीं, कर को धातु मानते हैं। वे क्रिया के ना-रहित रूप को ही धातु मानने के पक्ष में हैं। हमारे मत में हलन्त (व्यञ्जनान्त) धातु को मानना आवश्यक है। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने हलन्त धातु को माना है और वे चल् में ही आ, ई, ऊँ, ओ के योग से चला, चली, चलूँ, चलो आदि रूपों को मानते हैं (हि० भा० का स० व्या०, पृ० २६१)। हाँ, क्रियार्थक प्रत्यय के योग के पूर्व अ का आगम मानना होगा : यथा कर्+अ+ना= करना। यद्यपि ध्वनि-शास्त्र के सिद्धान्तानुसार या उच्चारण की दृष्टि से कर्ना ही ठीक है। जो कर लिखकर भी कर् पढ़ते हैं, वे भी ऐसा उच्चारण-नियम तो मानते ही हैं कि हिन्दी में 'अ' अन्तर्हित रहता है और उच्चरित नहीं होता। धातु हलन्त मानने से सन्धि के नियमों के पालन में बाधा नहीं पड़ती। नहीं तो, यदि किसी को यह बताया जाये कि कर+ऊँ=करूँ होता है, तो वह सन्धि-नियम पूछ सकता है। तो क्या हम अ+ऊ=ओ न बताकर अ+ऊ=ऊ बतायेंगे? यह तो सन्धि के नियमों को न मानना होगा। सन्धि के नियमों में ध्वनि का अधिक महत्व है। किसी शब्द या शब्दांश के अन्त में व्यञ्जन है, स्वर है या विसर्ग, इसके आधार पर ही तो स्वर-सन्धि, व्यञ्जन-सन्धि और विसर्ग-सन्धि के नियम बने हैं। व्यञ्जन-सन्धि को जबतक हम हिन्दी-व्याकरण में स्थान देते हैं, तब तक धातु हलन्त मानकर नियम बताने में ही सरलता है। कालार्थक प्रत्ययों के योग से ही कालबोधक क्रिया-रूप बनते हैं। पढ़् से पढ़ (तू पढ़), पढ़ूँ, पढ़े, पढ़ो, पढ़ा आदि बनते हैं। पढ़ को यदि हम धातु मान लें, तो पढ़ (म० पु० एकवचन में आज्ञा का रूप) शब्द और पढ़ धातु में अन्तर कैसे स्पष्ट होगा? पढना क्रिया का सामान्य रूप है, पर यह क्रियार्थक संज्ञा भी है। पढ़ना रूप की सिद्धि के लिए पढ़् धातु में अ को अन्तर्हित मानना आवश्यक हो जाता है। पर, पढ़ना का विश्लेषण करने में तो इस अन्तर्हित अ को दिखलाना होगा। पढना=प्+अ+ढ़+अ+ना। दूसरे अ का उच्चारण करना हिन्दी की उच्चारण-विधि के अनुकूल नहीं है। हिन्दी में जब ध्वन्यात्मक पाठ के लिए फोनेटिक रीडर बनेंगे, तो पढ़ना और चल्ना लिखना आवश्यक होगा।[१] विदेशी या विभाषी पाठकों

१. भाषाविज्ञान की पुस्तकों में शब्दों के उच्चरित स्वरूप को दिया जाता है, न कि उनके लिखित सङ्केत को (भाषाविज्ञान, डॉ० शास्त्री, पृ० ३०)।

को सही उच्चारण सिखलाने को ऐसे ध्वन्यात्मक पाठ-ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ेगी।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी-धातुयें दो प्रकार की हैं, स्वरान्त और व्यञ्जनान्त। संस्कृत में हलन्त धातुओं की ही संख्या अधिक है। जब हिन्दी की आधार-भाषा या पूर्वज भाषा में ही हलन्त धातुयें हैं, तब हिन्दी में ऐसा मानने में परम्परा का बल भी है। हिन्दी में धातुओं के रूप पर सम्यक् विचार नहीं हुआ है और जो छिटपुट चर्चा हुई है, उसे वैज्ञानिक विवेचन नहीं कहा जा सकता।

श्रीकामताप्रसाद गुरु अपने हिन्दी-व्याकरण में धातु के सम्बन्ध में लिखते हैं: 'जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है, उसे धातु कहते हैं, जैसे 'भागा' क्रिया में 'आ' प्रत्यय है, जो भाग मूल शब्द में लगा है, इसलिए 'भागा' क्रिया का धातु[१] भाग है।' पुनः आपका कथन है: 'धातु के अन्त में ना जोड़ने से जो शब्द बनता है, उसे क्रिया का साधारण रूप कहते हैं, जैसे भाग-ना, आ-ना, जा-ना, हो-ना। कोई-कोई भूल से इसी रूप को धातु कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि गुरुजी भाग को धातु मानते हैं। हलन्त धातु वे नहीं मानते। हमारे मत में भाग् को धातु मानना चाहिए। ऐसा मानने के कारण ही उन्हें लिखना पड़ा कि 'कई एक धातुओं का प्रयोग भी भाववाचक संज्ञा के समान होता है, जैसे हम नाच नहीं देखते।' नाचू को तब नाच+ऊ के योग से मानना पड़ेगा। हिन्दी में 'नचना' नाचना का क्रि० अ० रूप भी 'शब्दसागर' में मिलता है। नचना का प्रयोग शिष्ट-सम्मत नहीं माना जाता, पर प्राचीन कविता में मिलता है। अकर्मक और सकर्मक रूप में प्राथमिकता किसे दी जाय, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। फिर क्या, सुनना और सुनाना में परस्पर सम्बन्ध नहीं है। सुन् या सुना ये दो भिन्न धातुयें मानें या सुन् अकर्मक धातु से 'सुना' सकर्मक[२] धातु को बना हुआ मानें। संस्कृत में 'शृणोति' और 'श्रावयति' दोनों को श्रु धातु से निष्पन्न मानते हैं। हिन्दी का 'सुन' 'शृणु' से निकला है, पर 'सुना' 'श्रावयति' से

१. 'धातु' शब्द गुरु के अनुसार पुल्लिङ्ग है।

२. कुछ विद्वानों के अनुसार 'सुनाना' प्रेरणार्थक क्रिया-रूप है। शब्दसागर ने 'सुनाना' को सकर्मक और प्रेरणार्थक दोनों माना है। हमारे मत में 'सुनवाना' ही प्रेरणार्थक रूप है। 'सुनना' और 'सुनाना' दोनों सकर्मक हैं।—ले०

सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि सुन् से सुना बना है—अकर्मक से सकर्मक। पढ़ना में पढ़ धातु मानें और पढ़ाना में पढ़ा भिन्न धातु मानें, पर पढ़ और पढ़ा दोनों में तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध है ही। पढ वस्तुतः आत्मनेपदी धातु है और पढा परस्मैपदी। यहाँ आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द का व्यवहार मैंने विशेष अर्थ में किया है। जिस धातु में क्रिया का फल स्वयं करनेवाला भोगता है, वह आत्मनेपदी धातु है और जिसका फल कोई दूसरा भोगता है, वह परस्मैपदी। 'पढाना' क्रिया का फल स्वयं पढ़नेवाला भोगता है। 'मोहन पढ़ता है', यहाँ पढना क्रिया मोहन करता है, पर 'मोहन पढ़ाता है', में पढ़ाने का फल कोई अन्य भोगता है। पढ़ना भी सकर्मक है और पढ़ाना भी। कुछ वैयाकरण पढना क्रिया का पढ़ाना और पढ़वाना दोनों को प्रेरणार्थक रूप मानते हैं। पर, पढ़ाना प्रेरणार्थक रूप कैसे है? आना के योग से बने सभी रूप प्रेरणार्थक नही हैं। कई वैयाकरण बताते हैं कि चलना क्रिया का चलाना और चलवाना दोनों रूप ही प्रेरणार्थक हैं। हमें यह बात जँचती नहीं। 'वह दूकान चलाता है', इस वाक्य में 'चलाना' क्रिया प्रेरणार्थक नहीं है। वह किसी को प्रेरित नहीं करता, स्वयं चलाने की क्रिया करता है। पर, चलाना की धातु 'चला' को मूल धातु नही कह सकते हैं। 'चला' धातु तो अवश्य है, पर 'चल' ही मूल धातु है। अतः, मूल धातु-शब्द का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। हिन्दी में एक धातु से दूसरी धातु बनती देखी जाती है।

अकर्मक धातु से सकर्मक धातु का जो सम्बन्ध है, वह भी विचारणीय है। जँचना और जाँचना मे कैसा सम्बन्ध है? हमें यह बात जँचती है। आप इसे जाँचें। जाँचना का सम्बन्ध तद्भव होने से अवश्य है, पर अर्थ में अन्तर पड़ गया है। किसी से याचना कर किसी की उदारता या दानशीलता की एक प्रकार से हम परीक्षा लेते हैं या उसे जाँचते हैं। याचना शब्द याच् धातु से बना है। अतः, जाँच के निकट याच् है। अतएव, हम जाँच को ही मूल धातु कहेंगे। जाँच् सकर्मक धातु है, जिससे जँच् (अकर्मक धातु) निकला है, ऐसा ही मानना उचित है। अकर्मक धातु से सकर्मक धातु बनी है या सकर्मक से अकर्मक, इस प्रश्न के निर्णय में संस्कृत-धातुओं के रूप देखने से सहायता मिलती है। अकर्मक धातु से सकर्मक बनी है या सकर्मक धातु से अकर्मक धातु, इन दोनों मतों में हमारा कोई आग्रह नहीं है। हम इस प्रश्न पर बहुत कुछ सोचते रहे, पर अबतक हम दोनो मतो मे से किसी एक को ठीक कह सकने की स्थिति में नहीं हैं। हमारा जो कुछ चिन्तन इस सम्बन्ध में चलता रहा है, वह हम विद्वानों के सम्मुख रख देते हैं। सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं के मूल में कर्म की सत्ता या असत्ता की बात उठाई जाती

को सही उच्चारण सिखलाने को ऐसे ध्वन्यात्मक पाठ-ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ेगी ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी-धातुयें दो प्रकार की हैं, स्वरान्त और व्यञ्जनान्त । संस्कृत में हलन्त धातुओं की ही संख्या अधिक है । जब हिन्दी की आधार-भाषा या पूर्वज भाषा में ही हलन्त धातुयें हैं, तब हिन्दी में ऐसा मानने में परम्परा का बल भी है । हिन्दी मे धातुओं के रूप पर सम्यक् विचार नही हुआ है और जो छिटपुट चर्चा हुई है, उसे वैज्ञानिक विवेचन नही कहा जा सकता ।

श्रीकामताप्रसाद गुरु अपने हिन्दी-व्याकरण मे धातु के सम्बन्ध में लिखते हैं : 'जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है, उसे धातु कहते हैं, जैसे 'भागा' क्रिया में 'आ' प्रत्यय है, जो भाग मूल शब्द में लगा है, इसलिए 'भागा' क्रिया का धातु[1] भाग है ।' पुनः आपका कथन है : 'धातु के अन्त में ना जोड़ने से जो शब्द बनता है, उसे क्रिया का साधारण रूप कहते हैं, जैसे भाग-ना, आ-ना, जा-ना, हो-ना । कोई-कोई भूल से इसी रूप को धातु कहते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि गुरुजी भाग को धातु मानते हैं । हलन्त धातु वे नही मानते । हमारे मत में भाग् को धातु मानना चाहिए । ऐसा मानने के कारण ही उन्हें लिखना पड़ा कि 'कई एक धातुओं का प्रयोग भी भाववाचक संज्ञा के समान होता है, जैसे हम नाच नहीं देखते ।' नाचू को तब नाच+ऊ के योग से मानना पड़ेगा । हिन्दी मे 'नचना' नाचना का क्रि० अ० रूप भी 'शब्दसागर' मे मिलता है । नचना का प्रयोग शिष्ट-सम्मत नही म ना जाता, पर प्राचीन कविता में मिलता है । अकर्मक और सकर्मक रूप में प्राथमिकता किसे दी जाय, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है । फिर क्या, सुनना और सुनाना में परस्पर सम्बन्ध नहीं है । सुन् या सुना ये दो भिन्न धातुयें मानें या सुन् अकर्मक धातु से 'सुना' सकर्मक[2] धातु को बना हुआ मानें । संस्कृत मे 'शृणोति' और 'श्रावयति' दोनों को श्रु धातु से निष्पन्न मानते हैं । हिन्दी का 'सुन' 'शृणु' से निकला है, पर 'सुना' 'श्रावयति' से

१. 'धातु' शब्द गुरु के अनुसार पुल्लिङ्ग है ।

२. कुछ विद्वानों के अनुसार 'सुनाना' प्रेरणार्थक क्रिया-रूप है । शब्दसागर ने 'सुनाना' को सकर्मक और प्रेरणार्थक दोनों माना है । हमारे मत मे 'सुनवाना' ही प्रेरणार्थक रूप है । 'सुनना' और 'सुनाना' दोनों सकर्मक हैं ।—ले०

सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि सुन् से सुना बना है—अकर्मक से सकर्मक। पढ़ना में पढ़् धातु मानें और पढ़ाना में पढ़ा भिन्न धातु मानें, पर पढ़ और पढ़ा दोनों में तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध है ही। पढ वस्तुतः आत्मनेपदी धातु है और पढा परस्मैपदी। यहाँ आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द का व्यवहार मैंने विशेष अर्थ में किया है। जिस धातु में क्रिया का फल स्वयं करनेवाला भोगता है, वह आत्मनेपदी धातु है और जिसका फल कोई दूसरा भोगता है, वह परस्मैपदी। 'पढाना' क्रिया का फल स्वयं पढ़नेवाला भोगता है। 'मोहन पढ़ता है', यहाँ पढ़ना क्रिया मोहन करता है, पर 'मोहन पढ़ाता है', में पढ़ाने का फल कोई अन्य भोगता है। पढ़ना भी सकर्मक है और पढ़ाना भी। कुछ वैयाकरण पढ़ना क्रिया का पढ़ाना और पढ़वाना दोनों को प्रेरणार्थक रूप मानते हैं। पर, पढ़ाना प्रेरणार्थक रूप कैसे है? आना के योग से बने सभी रूप प्रेरणार्थक नही हैं। कई वैयाकरण बताते हैं कि चलना क्रिया का चलाना और चलवाना दोनों रूप ही प्रेरणार्थक हैं। हमें यह बात जँचती नहीं। 'वह दूकान चलाता है', इस वाक्य में 'चलाना' क्रिया प्रेरणार्थक नहीं है। वह किसी को प्रेरित नही करता, स्वयं चलाने की क्रिया करता है। पर, चलाना की धातु 'चला' को मूल धातु नहीं कह सकते हैं। 'चला' धातु तो अवश्य है, पर 'चल' ही मूल धातु है। अतः, मूल धातु-शब्द का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। हिन्दी मे एक धातु से दूसरी धातु बनती देखी जाती है।

अकर्मक धातु से सकर्मक धातु का जो सम्बन्ध है, वह भी विचारणीय है। जँचना और जाँचना में कैसा सम्बन्ध है? हमें यह बात जँचती है। आप इसे जाँचें। जाँचना का सम्बन्ध तद्भव होने से अवश्य है, पर अर्थ मे अन्तर पड़ गया है। किसी से याचना कर किसी की उदारता या दानशीलता की एक प्रकार से हम परीक्षा लेते हैं या उसे जाँचते हैं। याचना शब्द याच् धातु से बना है। अतः, जाँच के निकट याच् है। अतएव, हम जाँच को ही मूल धातु कहेंगे। जाँच् सकर्मक धातु है, जिससे जँच् (अकर्मक धातु) निकला है, ऐसा ही मानना उचित है। अकर्मक धातु से सकर्मक धातु बनी है या सकर्मक से अकर्मक, इस प्रश्न के निर्णय में संस्कृत-धातुओं के रूप देखने से सहायता मिलती है। अकर्मक धातु से सकर्मक बनी है या सकर्मक धातु से अकर्मक धातु, इन दोनों मतों में हमारा कोई आग्रह नहीं है। हम इस प्रश्न पर बहुत कुछ सोचते रहे, पर अबतक हम दोनों मतों में से किसी एक को ठीक कह सकने की स्थिति में नही हैं। हमारा जो कुछ चिन्तन इस सम्बन्ध में चलता रहा है, वह हम विद्वानो के सम्मुख रख देते हैं। सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं के मूल में कर्म की सत्ता या असत्ता की बात उठाई जाती

है। 'वह पढ़ता है', इस वाक्य में कर्म (पुस्तक) की सत्ता अनुमित है, वाक्य में कर्म कथित नहीं है। अतः, जब हम पढ़ना क्रिया को सकर्मक कहते हैं, तब हमारा अभिप्राय यही होता है कि पढ़ने की क्रिया को पुस्तक या लेखादि की अपेक्षा है, नहीं तो कर्त्ता जिस क्रिया को करता है, उसकी सम्भावना नहीं हो सकती।

अब अकर्मक क्रियाओं पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। सामान्यतः कह दिया जाता है कि अकर्मक क्रिया वह है, जिसमें कर्म नहीं रहता। वह सोता है, वह उठता है, वह हँसता है आदि वाक्यों के अर्थ पर विचार करें। सोना, उठना, हँसना को शब्दसागर में भी अकर्मक क्रिया माना गया है। वैयाकरण भी ऐसा मानते हैं। इन तीनों क्रियाओं के स्वरूप समान नहीं हैं। 'सोना' क्रिया में कर्त्ता को न्यूनतम चेष्टा या प्रयत्न करना पड़ता है। 'उठना' और 'हँसना' में कुछ अधिक चेष्टा, प्रयत्न या क्रियात्व अपेक्षित है। 'पड़ना' क्रिया में गति नहीं के बराबर है। 'पुस्तक जमीन पर पड़ी है।' पड़ी पड़् धातु का भूतकालिक रूप है। 'वह जीता है', 'उसका सिर पिराता है', ऐसे वाक्यों में जीना और पिराना क्रिया में कर्त्ता की चेष्टा या प्रयत्न नहीं के बराबर है। इन धातुओं से केवल अक्रिय अवस्था (पैसिव स्टेट) का बोध होता है। धात्वर्थ से क्रिया के अर्थ का ही बोध होता है। वाक्य में प्रयोग होने और उसके अर्थ पर विचार करने से ही यह ज्ञात होता है कि कोई धातु अकर्मक है या सकर्मक। कहीं कर्म लुप्त रहता है, तो कहीं प्रकट। 'राम खाता है' में 'खा' धातु है। खाने की क्रिया राम करता है, अतः राम कर्त्ता है। खाने से राम का ही पेट भरेगा, उसी के शरीर का पोषण होगा, अतः खाने की क्रिया का फल भी उसे ही मिलेगा। फलभोक्ता कर्त्ता ही है। किन्तु, खाने की क्रिया किसी ऐसी वस्तु की अपेक्षा करती है, जिसे कर्त्ता खाता है या जिसका वह भोग करता है और जिस पर उसके खाने के व्यापार का कुछ प्रभाव पड़ता है। उस वस्तु के वाचक शब्द को व्याकरण में कर्म कहते हैं। 'राम खाता है' में खाना क्रिया (खा धातु) सकर्मक है, यद्यपि कर्म का उल्लेख नहीं हुआ है। राम क्या खाता है, यह हम नहीं जानते। 'राम मिठाई खाता है' में खाना क्रिया का कर्म कथित है, वह है मिठाई। यहाँ क्रिया कर्म के साथ है, सकर्मक (कर्म-सहित) है, अतः खाना सकर्मक क्रिया है। 'राम खाता है' में खाना क्रिया कर्म की अपेक्षा करती है, पर कर्म-सहित (सकर्म) है नहीं। ऐसे स्थान पर खाना क्रिया को क्या सकर्मक कहना उचित होगा? वैयाकरणों ने खाना को सकर्मक क्रिया मान लिया है, कदाचित् इसका कारण यह है कि प्रायः कर्म कथित होता है, पर कर्म का कथन आवश्यक नहीं है। उचित तो यही है

कि जब कर्म कथित होता है, पर कर्म का कथन आवश्यक नहीं है। उचित तो यही है कि जब कर्म कथित हो, तभी हम क्रिया को सकर्मक कहें। जब कर्म अकथित, अदृष्ट या लुप्त हो, तो उसे अदृष्टकर्मक कहें। 'राम खाता है' में खाना क्रिया अदृष्टकर्मक है और 'राम मिठाई खाता है' में खाना क्रिया सकर्मक।

कुछ क्रियाओं में क्रिया या व्यापार का प्रभाव केवल कर्त्ता पर पड़ता है। वही फल का भोक्ता भी है और वही फल का आश्रय। 'राम सोता है' में सोना क्रिया है और उसके फल का भोक्ता भी राम है। उसे ही सोने से विश्राम मिलता है। वही फल का आश्रय भी है। व्यापार का आश्रय होता है कर्त्ता और फल का आश्रय होता है कर्म। अकर्मक क्रिया में फल का आश्रय, फल का भोक्ता और व्यापार का आश्रय कर्त्ता ही रहता है। उसका किसी अन्य वस्तु से सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिए, जिन क्रियाओं को कर्म की किञ्चित् अपेक्षा नहीं होती, वे अकर्मक हैं और जिन्हें कर्म की अपेक्षा है, वे सकर्मक। कर्म की अपेक्षा और कर्म की विवक्षा में अन्तर है। जब कर्म अपेक्षित तो है, पर विवक्षित नहीं, तब क्रिया को शुद्ध अर्थ में सकर्मक नहीं कह सकते। अतः, विचार करने से सकर्मक के भी दो भेद किये जा सकते हैं—(१) अपेक्षितकर्मक और (२) विवक्षितकर्मक।

अब प्रश्न है कि क्रिया के दो भेदों—सकर्मक और अकर्मक के आधार पर क्या धातु के भी सकर्मक और अकर्मक भेद किये जा सकते हैं? हमारे विचार में ऐसा भेद करना उचित नहीं। ऐसा भेद क्रिया में ही करना ठीक है। धातु का स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। संस्कृत में वे तिङन्त होने पर ही चलते हैं और तब पद कहलाते हैं। हिन्दी में भी (हलन्त धातुओं का) मूल रूप में प्रयोग नहीं होता। हाँ, दीर्घस्वरान्त धातुओं का, विध्यर्थ में मध्यमपुरुष एकवचन रूप के साथ समानता है। सो, खा, पी, रो आदि कुछ ऐसी धातुयें हैं। हलन्त धातु में अ का आगम होने पर जो रूप बनता है, उसे धातु (रूट) न मानकर 'स्टेम' मानना उचित है, अतः चल्, सुन्, कर्, पढ़्, गिन् का चल, सुन, कर, पढ़, गिन आदि (क्रियामूल या स्टेम के रूप) बनता है और इन रूपों का मध्यमपुरुष एकवचन में प्रयोग होता है। संस्कृत में भ्वादिगणीय धातुओं में तिङन्त प्रत्ययों के योग के पूर्व अ का आगम है—चर्+चर्+अ+ति= चरति। जहाँ धातु का आदेश हो जाता है, वहाँ आदिष्ट रूप के बाद अ—जुड़ता है। भू—भव्, गम्—गच्छ्, नी—नय्, यही प्रक्रिया हिन्दी में भी हलन्त धातुओं में देखी जाती है।

धातुओं का वर्गीकरण

कई आधारों पर धातुओं के वर्ग बनाये जा सकते हैं। धातु के दो भेद स्वर और व्यञ्जन के आधार पर किये जाते हैं—(१) स्वरान्त (अजन्त) धातु और व्यञ्जनान्त (हलन्त) धातु।

स्वरान्त धातु—जा, खा, पी, गा, सो, रो आदि।

व्यञ्जनान्त धातु—चल्, पढ़्, सुन्, गिर्, कह्, गुन् आदि।

अक्षर-संख्या के आधार पर धातुओं के एकाक्षरी, द्व्यक्षरी, त्र्यक्षरी आदि भेद होते हैं।

(१) एकाक्षरी—१. आ। २. खा, गा, पी, सो, रो, ले, दे आदि। (इन्हें एकाक्षरी मान लेते हैं। वास्तव मे इनमें एकमात्रिक अक्षर हैं)।

(२) द्व्यक्षरी—कर्, सुन्, लिख्, फंस्, खेल्, जग्, डूब् आदि।

(३) त्र्यक्षरी—चमक्, उलट्, धधक्, सिहर्, सुलझ्, थिरक् आदि।

विशेष—ना हिन्दी का क्रिया-प्रत्यय है। व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ ना जुड़ने ■ पूर्व अ का आगम होता है। इस ना का विकास संस्कृत न से हुआ है। पठनं–पढ़ना, चलन–चलना, ज्वलनं–जलना। ना के पूर्व धातु का जो रूप रहता है, उसे क्रियामूल या प्रातिपदिक कह सकते हैं। इसे अंग्रेजी में स्टेम कहते हैं। पढ़–धातु (रूट), पढ्–स्टेम।

नाम धातु

अनेक नामों (संज्ञाओं) से क्रिया का काम लिया जाता है। खर्च–खर्चना, दाग–दागना, मोह–मोहना।

कुछ नामों से क्रिया बनाने के पूर्व नाम में कुछ विकार होते हैं :

हाथ—हथियाना	नाक—नकियाना
लात—लतियाना	गोली—गोलियाना
बात—बतियाना	चपत—चपतियाना

आद्य दीर्घस्वर को ह्रस्व कर या (य्+आ) का आगम कर दिया जाता है। आद्य स्वर संयुक्त हो, तो उसका उच्चारण लघु होता है। गोलियाना में गा पूर्ण उच्चरित नहीं होता। ए ओ के लघु उच्चारण के लिए विशेष चिह्न की आवश्यकता है, अन्यथा ए, ओ के पूर्ण और लघु उच्चारण में अन्तर नहीं बताया जा सकता। नेहरू, मेहता, ओसारा, मोहरा आदि का उच्चारण लिख-

कर बताना सम्भव नहीं है। इसके लिए नेहरू, मेहता, ओसारा, मोहरा आदि की मात्राओं में चिह्नविशेष का प्रयोग आवश्यक है। ह्रस्व एं के लिए ॅ और ह्रस्व ओ के लिए ॅा चिन्ह निर्धारित किया जा सकता है।

विशेषण से क्रिया बनाना

आधा—अधियाना
चिकना—चिकनाना
मोटा—मोटाना[१]
दोहरा—दोहराना[२]

मूल धातु और यौगिक धातु

कुछ धातुयें मूल हैं, कुछ यौगिक। (१) मूल धातु—आ, खा, पी, सो आदि (२) यौगिक धातु—कसमसा (कस्-मस् के योग से); हड़बड़ा (हड़, बड़, के योग से) धातु की आवृत्ति से—थरथरा, खड़खड़ा, टिमटिमा, चिड़-चिड़ा, किरकिरा। थरथरा=थर्थर्+आ, खड़खड़ा=खड़खड़्+आ। अनेक आवृत्तिमूलक यौगिक धातुयें ध्वन्यात्मक हैं—गुनगुना, टनटना, फरफरा, सरसरा आदि।

उत्पाद्य और अनुत्पाद्य धातुयें

कुछ धातुयें उत्पाद्य (प्रोडक्टिव) हैं और कुछ अनुत्पाद्य (अनप्रोडक्टिव)। एक भेद अल्पोत्पाद्य (less productive) भी माना जा सकता है। एक धातु से दूसरी धातु बनती है: जैसे कट् से काट्, कटा, कटवा; क्रिया कटना काटना, कटाना, कटवाना। तब क्या हम इन चारों को भिन्न धातुयें मानें? कट् अकर्मक धातु से काट् सकर्मक धातु और कटा और कटवा प्रेरणात्मक धातु-रूप बनते हैं। हमारे मत में कट् से काट्, कटा, कटवा धातुयें बनी हैं, अतः इन्हें एक ही धातु के रूपान्तर कहना चाहिये।

कई धातुओं के सकर्मक और प्रेरणात्मक रूप नहीं बनते। ऐसी धातुओं को अनुत्पाद्य कह सकते हैं। उत्पाद्य-अनुत्पाद्य के लिए उर्वर-अनुर्वर का भी

१-२. इन रूपों के स्थान पर मुटाना, दुहराना आदि भी लिखे जाने लगे हैं। कदाचित्, ओ और दो के लघु-उच्चारणसूचक चिन्हों के उकार की ओर झुकाव बढ़ने लगा है। बोल-चाल में लघु अधिक प्रचलित हैं।—ले०

प्रयोग हो सकता है। धातु से संज्ञा, विशेषण आदि तो बनते ही हैं, इस दृष्टि से तो सभी धातुयें उर्वर होती हैं। यदि ह और थ् को सत्तार्थक धातु मान लें, तो इनसे संज्ञा, विशेषण आदि रूप नहीं बनते। ह और थ् को केवल सहकारी धातु भी मानना ठीक नहीं है। 'राम है' वाक्य में 'है' सत्ता का बोध कराने में स्वयं समर्थ है, उसे किसी अन्य धातु की अपेक्षा नहीं है और वह यहाँ सहकारी धातु के रूप में नहीं, स्वतन्त्र धातु है।

संयुक्त धातु

दो धातुओं का एक साथ भी प्रयोग होता है और तब एक को मुख्य और दूसरी को गौण धातु कह सकते हैं। डालना, रहना, पड़ना, जाना क्रियाओं की धातुयें (डाल, रह, पड़, जा आदि) मुख्य धातुओं की सहकारी बन जाती हैं।

पढ़ डाल्—(पढ़ डालना)। चल पड़्—(चल पड़ना)।
मर् जा (मर जाना)। सो रह् (सो रहना)।

प्रेरणात्मक धातु (णिजन्त धातु सं०) संयुक्त धातु नहीं है, उसमें धातु का रूपान्तर-मात्र होता है। कट्—कटवा, मर्—मरवा 'प्रे० धातु'।

धातु का विस्तार

अनेक धातुओं का विस्तार होता है। विस्तार के लिए *प्रायः क् प्रत्यय* का प्रयोग हुआ है। मह से महक्, चम् से चमक्, चप् से चपक्, धातुयें बनी हैं। महकना क्रिया की महक् धातु मह धातु में 'क' के योग से बनी है। ऐसे ही चमक् चम्+अ+क के योग से बनती है। मूल मह् और चम् है—यह मह और चम् के अन्य शब्दों में रहने से प्रकट है। चम् की आवृत्ति से चमचमाना, चमचम करना, चमकना और चह से चहचहाना, चहचह करना, चहकना आदि क्रियायें प्रकट हैं। कभी-कभी धातु के आद्य 'अ' का विकल्प से 'इ' भी होता है और 'इ' वाला रूप अर्थ में कुछ अन्तर कर देता है। जैसे—चप्—चपक्, चिपक् (चपकना, चिपकना)।

हिन्दी में *'क' प्रत्यय* कई प्रकार का है। कहीं वह *स्वार्थी प्रत्यय*[1] है और कहीं धातु का विस्तार-मात्र करता है। अनेक स्थलों पर वह किसी आघात

---

१. संस्कृत में *'क' स्वार्थ प्रत्यय* भी है और लघुतासूचक भी। जैसे, पुत्र—पुत्रक, बाल—बालक, बटु—बटुक आदि। हिन्दी में *'स्वार्थ प्रत्यय'* के स्थान पर स्वार्थी प्रत्यय चलना चाहिये। स्वार्थे (सप्तम्यन्त पद) संस्कृत व्याकरण में ही अच्छा लगता है।—ले०

के शब्द, गति या पीड़ा का सूचक होता है; जैसे—कड़क, खड़क, खटक, चटक, झटक, झिड़क, ठनक, भटक, भड़क, धड़क, फड़क, फटक।

कठोर शब्द सूचित करने को प्रायः ट या ड़ का प्रयोग होता है और इससे अर्थ में भी कुछ अन्तर आ जाता है। नीचे दिये शब्द-युग्मों को देखें और उनके अर्थों पर विचार करें :

खटक (ना)—खड़क (ना)
झटक (ना)—झटका
झिड़क (ना)—झिड़की
फटक (ना)—फटकन
फड़क (ना)—फड़कन
भटक (ना)—भटक
भड़क (ना)—भड़क

'क' प्रत्यय से सैकड़ों धातुयें बनती हैं। इनमें अनेक धातुयें मूल धातुओं का विस्तार (extention of roots) मात्र हैं। नीचे हम 'क' से बने शब्दों की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं। इन शब्दों के क-रहित रूपों को धातु के रूप में भी देखा जाता है और उनसे अनेक शब्दों का विकास भी ध्यातव्य है। कभी यह विकास एकधा और कभी बहुधा होता है।

कसक, कड़क, कचक; खटक, खड़क, खसक (खिसक); गटक, गमक, गचक; चटक, चमक, चसक; छमक, छलक, छलक, छुमक; झनक, झलक, झड़क, झिड़क, झटक; टसक, टनक, टिनक, टुनक, टपक, टहुक; ठमक, ठसक, ठनक, ठुमक; ढनक, ढलक, (ढुलक); तड़क, तमक; दमक, दरक, दलक; धमक, धड़क; पटक; फड़क, फटक, फसक, फलक; भटक, भड़क, भनक, भसक; मसक, मचक, मटक, मुरक (मुड़क) मुचक; लपक, ललक; सटक, सरक, सुड़क, सुरक।

क-रहित रूप ही मूलांश है, यह आवृत्ति-मात्र से बने यथोद्धृत शब्दों से ज्ञात होता है : मचमच, सपसप, तड़तड़, फड़फड़, टपटप, कटकट, खटखट, चटचट, झलझल, टनटन, टुनटुन, छुमछुम, धमधम, ठनठन, झनझन, भनभन, भड़भड़, फसफस, छनछन, गुनगुन।[1]

१. ऐसे शब्दों में प्रायः 'आहट' के योग से भाववाचक
हैं। जैसे : मचमचाहट, झनझनाहट, फड़फड़ाहट, छनछनाहट।

कुछ शब्द पूर्वस्थित धातु में आ के योग से और फिर धातु+अ के आने से बनते हैं : मचामच, लपालप, तड़ातड़, फटाफट, टपाटप, कटाकट, सटासट, घटाघट, टनाटन, धमाधम, ठनाठन, भड़ाभड़, छनाछन आदि।

कुछ शब्दों में आवृत्ति के पूर्व 'म' का आगम होता है। जैसे—कसमकस, ठसमठस, धसमधस, ठेलमठेल।

बहुतेरी धातुयें, जिनके अन्त में स् है, व्यञ्जन के साथ स् के आने से बनी हैं। जैसे—कस्, खस्, चस्, टस्, ठस्, फस्, भस्, मस्। 'स्' से बनी इन धातुओं में स् मन्द ध्वनि का सूचक है। इनसे ही कसक, खसक, चसक, टसक, ठसक, फसक, भसक, मसक आदि शब्द बनते हैं। पुनः मस के योग से कई शब्द बनते हैं : कसमस, टसमस, (टस से मस न होना—मुहावरा)।

इसी प्रसङ्ग में रिमझिम, गिटपिट आदि सदृश शब्दों की रचना भी विचारणीय है। अनेक शब्द समश्रुति अन्य वर्णों से बने शब्द के योग से निष्पन्न होते हैं :

रिमझिम (र्+इम, झ्+इम)
कुलबुल (क्+उल, ब्+उल)
गिटपिट (ग्+इट, प्+इट)
बनठन (ब्+अन, ठ्+अन)
पिचपिच (प्+इच, प् +इच)
सिटपिट (स् + इट, प् + इट)
हड़बड़ (ह् + अड़, ब् + अड़)
लगभग (ल् + अग, भ् अग)
गटपट (ग् + अट, प् + अट)
झटपट (झ् + अट, प् + अट)
बकझक (ब् + अक, झ् + अक)
हलचल (ह् + अल, च्+अल)

अनुकरणात्मक धातुयें

कुछ धातुयें प्राकृतिक शब्दों के अनुकरण से बनी हैं। फूँक में 'फूँ' मूलाद्य है और 'क' प्रत्यय। फूँकने में 'फूँ' का शब्द होता है। छौंक में 'छौं' मूलाद्य है और 'क' प्रत्यय। छौंकने में 'छौं' का शब्द होता है।

व्युत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

व्युत्पत्ति की दृष्टि से धातुओं को १. तत्सम, २. तद्भव, ३. देशी, ४. विदेशी और ५. अज्ञात इन मूल पाँच वर्गों में रखकर विचार कर सकते हैं।

तत्सम

चल्, मिल् आदि। संस्कृत चल् से चलति, चलतः, चलन्ति आदि बनते हैं। हिन्दी चल् से चलता, चलते, चला आदि। तप्—तप् (तपना क्रि० से तपता, तपते आदि); पूज्—पूज् (पूजता); फल्—फल् (फलता); खेल्—खेल् (खेलता); चर्—चर् (चरता); जप्—जप् (जपता); पच्—पच् (पकता); रुच्—रुच् (रुचता); लग्—लग् (लगता); लिख्—लिख् (लिखता); सह्—सह् (सहता)।

तद्भव

तद्भव धातुओं की संख्या अधिक है।[१] तत्सम धातु में तद्भव धातुतुः पठ्—पढ़्, कथ्—कह्, या—जा, पुष्—पोस्, कस्—कस्, पिस्—पिस्, कृ—कर्, मृ—मर्, तृ—तर्, कृत्—कट्। कृ से वैदिक 'करति' होता है।

संस्कृत कृदन्त रूपों से तद्भव धातु

उपविष्ट का उपसर्ग हटने पर विष्ट—विष्ट से बैठ। प्रविष्ट—पैठ। पिब्—पी। (हिन्दी में कोई धातु ह्रस्वस्वरान्त नहीं है, अतः 'पि' न होकर 'पी' हुआ)। उत्थ (उत्थान, उत्थित आदि में स्थित उत्थ) से 'उठ्'। उठ—उत्+स्था।

अनेक संस्कृत शब्दों के लघ्वीकरण या मूल आदि अक्षरों के ग्रहणमात्र से हिन्दी धातुयें बनी हैं। रोदन—रुद् से बना है। रुद् के हल् का लोप करने से रु बच जाता है। 'रु' का रोदन में 'रो' होता है। इसी 'रो' को हिन्दी में धातुरूप से ग्रहण किया गया।[२] पा—प्राप् के प्रा से (हिन्दी में किसी धातु

---

१. हिन्दी-धातुओं में अधिकांश की उत्पत्ति सीधे संस्कृत-धातुओं से नहीं हुई है। बहुधा वे संस्कृत-धातुओं के परिवर्तित रूपों से हुई हैं। ये परिवर्तित रूप अधिकांश वर्तमान काल के हैं।—हार्नली।

२. संस्कृत-धातु के आद्य स्वर 'उ' तद्भव में प्रायः 'ओ' हो जाता है। रुद् का 'रो'।

के आदि में संयुक्त वर्ण नहीं है। अन्तःस्थ वर्ण अबल भी होते हैं। अतः, प्रा के र् का लोप)। गह—गह्। खा—खाद् के खा से, द् का लोप्। उड़—उड्डीयते, उड्डीयमान आदि शब्दों के (उत्+डी) आदि-स्थित उड् से निकला है। ड का तद्भव ड़, उत् के त् का हल् होने के कारण लोप। उतर—उत्+तृ। उत् का उ, तृ का तर् (जैसे मृ का मर्), सं० उत्तरति, प्रा० उत्तरइ। उपज—उत्+पद्। उत्पद्यते, प्रा० उपज्जइ। हिन्दी द्वित्व वर्णों का ग्रहण प्रायः नहीं करती, अतः उपज। द्य का ज हिन्दी में होता है, जैसे अद्य का आज। काँप—कम्प (कप्) से। हिन्दी की प्रवृत्ति अनुस्वार को अनुनासिक में बदलने की है। जैसे, चन्द्र—चाँद। मंद—माँदा। खंड—खँड़ (हर)। फूट—फुट्; फुट्टयति आदि रूप। खाँस—कास्। प्राकृत में ही कासते का कासइ, खासइ हो गया। उर्दू बहु-प्रचलित 'खास' से भेद करने को कदाचित् 'खाँस' कर दिया गया। यह भी हो सकता है कि खाँसने में कंठ से जो ध्वनि होती है; उसे सूचित करने के लिए खा में अनुनासिकता आई हो। खीझ—खिद्यते के खिद्य से। खिद् (इ का ई)। गिन-गन—'गण सख्याने' से, गणयति आदि। गल—गल् से; गल् भक्षणे स्रावे च। घस—घृष्; घृष् सङ्घर्षे स्पर्धायां च। (ऋ का लोप भी होता है और कहीं इ भी)। चू—च्युत् आसेचने; त् का लोप्। य् का अन्तःस्थ होने से लोप। उ का ऊ। चख—चष् भक्षणे। ष का ख।

कुछ और तद्भव धातुओं का तत्सम धातुओं से सम्बन्ध दिखलाया जाता है। चूस—चूष् पाने। चबा—चर्व अदने। चर्व के व का ब। छू—छुप् स्पर्शे। प् का लोप, आदि स्वर का दीर्घ। डोल—दुल्। द का ड, उ का ओ। फट—स्फट्। स् का लोप (आद्य स् का प्रायः लोप होता है)। पठा—प्र+स्था। प्र का प, स्था का ठा। पड़—पत् (त् का ड) पतति—पडइ प्रा०। रिस, रुस्—रिष्। रुँध—रुध्। रेंग—रिङ्ग्। लख—लक्ष्। लीप—लिप्। लुढ़—लुड् या लुठ्। लूट—लुठ्। ले—लभ्; लभते—प्रा०, लहइ; लेइ—ले। लोट—लुट्। सक—शक्। सड़—सद् या शद्। वैदिक सदति, प्रा० सड़इ। सी—सिव्। सीच—सिच्। सुन—श्रु; शृणोति के ण के प्रभाव से न। सोच—शुच्। सोह—शुभ्। हो—भू; भवति, प्रा० भवइ, हुवइ—होइ, होय, हो।

देशी धातु

गिर्, लाद्, हिल्, फिर्, धिर् आदि ये धातुयें किसी अनार्य भाषा की जान पड़ती हैं। संस्कृत से इनका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। हो

सकता है कि इन धातुओं में कुछ का कुल बाद में ज्ञात हो। तब तक इन अज्ञातकुलशील धातुओं को देशी मान लिया जा सकता है।

विदेशी धातु

कबूल् (ना, दाग् (ना), गुस्सा (ना), आजमा (ना), गरदान् (ना), दफ़ना (ना), बरगला (ना), नजर (नजरियाना)। अरबी-फारसी से ली हुई ये धातुयें हिन्दी में चलती हैं।

अंग्रेजी के किसी शब्द से धातु का काम हिन्दी में नहीं लिया जाता। प्रायः विदेशी शब्दों से संज्ञायें ग्रहण की जाती हैं और उनमें हिन्दी की सहकारी क्रियायें जोड़कर प्रयोग किया जाता है।

विशेष—जो हिन्दी के अपने शब्द नहीं हैं, अर्थात् कुछ संस्कृत-संज्ञाओं को छोड़कर, संस्कृत और विदेशी संज्ञाओं से क्रिया बनाने के पूर्व हिन्दी की किसी सहकारी क्रिया का प्रयोग करना आवश्यक है :

बिछुड़ना —	वियोग होना	सोना —	शयन करना
खाना —	भोजन करना	खींचना —	आकर्षण करना
छोड़ना —	त्याग करना	दुहना —	दोहन करना
सुनना —	श्रवण करना	गिनना —	गणना करना
ढोना —	वहन करना	बेचना —	विक्रय करना
बोना —	वपन करना	रोना —	रोदन करना

तद्भव क्रियाओं का अधिक प्रयोग करना वाञ्छनीय है। संस्कृत-संज्ञाओं में करना आदि सहायक क्रियाओं के प्रयोग से हिन्दी संस्कृतमुखी हो जाती है।

इसी प्रकार उर्दू (अरबी-फारसी-तुर्की) के शब्दों के साथ भी करना आदि सहायक क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है।

अंग्रेजी की किसी संज्ञा में ना लगाकर क्रिया नहीं बनी है। अतः, कभी बनाने की जरूरत पड़ जाये, तो सहायक क्रिया की सहायता लेनी पड़ेगी।

कालबोध की प्रक्रिया

हलन्त धातु से अ जोड़कर क्रियामूल या स्टेम बनता है। क्रियामूल के बाद ना जोड़ने से क्रिया का सामान्य रूप बन जाता है। चल्+अ=चल

प्रातिपादिक। चल—ना=चलना। सो—ना=सोना। कालबोधक प्रत्ययों को समझने के पहले धातु और क्रियामूल के भेद को समझ लेना जरूरी है। इन कालबोधक प्रत्ययों मे कुछ स्वर-प्रत्यय हैं और कुछ व्यञ्जन-प्रत्यय।

स्वर-प्रत्यय—१. चल्—अ=चल (तू)। २. चल्—आ=चला (वह)। ३. चल्—ई=चली (तू, वह-स्त्री०)। ४. चल्—ईं=चलीं (हम, तुम, वे)। ५. चल्—ए=चले (हम, तुम, वे)। ६. चल्—एँ=चलें (हम, वे)। ७. चल्—ऊँ=चलूँ (मैं) ८. चल्—ओ=चलो। इस प्रकार, कालबोधक स्वर-प्रत्यय हैं—अ, आ, ई, ईं, ए, एँ ऊँ और ओ।

यदि धातु का अन्त्य स्वर दीर्घ हो—आ-ई, ऊ अथवा सन्धि-स्वर ए-ओ हो, तो य् का आगम होता है। ई का इ और ऊ का उ हो जाता है। ए का भी मूल स्वर इ हो जाता है, केवल दे और ले में :

खा—खा—य्—आ=खाया। पा—पा—य्—आ=पाया। पी—पि—य्—आ=पिया। जी—जि—य्—आ=जिया। चू—चु—आ=चुआ। छू-छु—आ=छुआ। दे—दि—य्—आ=दिया।[1] ले—लि—य्—आ=लिया। खे—खे—य्—आ=खेया। विशेष—खे के ए का इ नहीं होता। बो-बो—य्—आ=बोया। रो—रो—य्—आ=रोया।

'आप' के साथ अनुरोधयुक्त आदेश की अवस्था में इस प्रकार प्रयोग होते हैं : हलन्त धातु इ+य्—ए। सुन्—इ—य्—ए=सुनिये। कह्+इ—य्—ए=कहिये। इसे सरलता के लिए यों भी बता सकते हैं-धातु के परे इ का आगम होता है और फिर य्—ए। चल्—चल्—इ—य्—ए=चलिये। आ—आ—इ—य्+ए=आइये। पी—पी—ज्—इ—य्—ए=पीजिये। दी—दी—ज्—इ—य्—ए=दीजिये। ली—ली—ज्—इ—य्—ए=लीजिये।

पी, दी, ली आदि में ज् का आगम होता है।[2] खे—खे+इ—य्—ए=खेइये। सो—सो—इ—य्—ए=सोइये।

---

१. केवल तीन धातुयें एकारान्त हैं; जैसे खे, दे और ले।

२. हमारा खयाल है कि दीजिये, लीजिये में इसलिए ज का आगम होता है, चूँकि ई के बाद पुनः इये के इ का आना हिन्दी की प्रकृति के प्रतिकूल है। दो स्वर हिन्दी मे एक साथ नही आते। ज ही क्यों आगम होता है, इसका कदाचित् कारण यह है कि दीयते, देय आदि मे य है और य का तद्भव ज होता है।—ले०

व्यञ्जन-प्रत्यय

(१) त्—त् हिन्दी में वर्त्तमानकाल-बोधक प्रत्यय है। त्—आ के योग से ता, त्—ई के योग से ती। ता एकवचन में और त्—ए=ते बहुवचन में होता है। चलता पु० ए० व०, चलती स्त्री० एक व०, चलते पु० ब० व०, चलतीं स्त्री ब० व०।

अतः, त वर्त्तमानकालिक प्रत्यय के चार रूप होते हैं : ता-ती, ते-ती।' यह तिङ् प्रत्ययों के ति, तः से लिया जान पड़ता है। ति तः में व्यञ्जन त है।

(२) ग्—ग् हिन्दी में भविष्यकाल-बोधक प्रत्यय है। इसके चार रूप होते हैं—गा गी, गे-गीं, जो इस प्रकार बनते हैं—ग् —आ=गा, ग् —ई=गी, ग् —ए=गे, ग् —ईं=गीं। चल् के योग से ये रूप बनते हैं—उ० पु० चलूँगा (चलूँगी), चलगे (चलेंगी)। म० पु० चलेगा (चलेगी), चलोगे (चलोगी)। प्र० पु० चलेगा (चलेगी), चलेंगे (चलेंगी)।

काल-बोध में और दो धातुओं से सहायता ली जाती है। ह् और थ्।' ह् अस् से निकला है। इसके चार रूप होते हैं—हूँ, है, हैं, हो।[१] इस धातु पर लिङ्ग का प्रभाव नहीं पड़ता। अस् सत्तायाम्, ह् भी सत्ताबोधक मात्र है। थ्—यह ह् का ही अर्थ भूतकाल में देता है। थ् त्+ह् से बनता है। अतः, त् व्यञ्जन में ह् का योग होने पर सत्ता का बोध होना ही चाहिए। इस थ् पर लिङ्ग का प्रभाव पड़ता है। था—थी। इसके चार रूप होते हैं—था, थे, थी, थीं।

ह् और थ् धातु की कल्पना और व्युत्पत्ति

ह् अस् धातु से निष्पन्न जान पड़ता है। अ का लोप कर स् और फिर स् का ह्। इसके पक्ष में प्राचीन प्रमाण भी है। वैयाकरणों ने अपने-अपने धातुपाठ दिये हैं। पतञ्जलि ने बताया है कि अस् आपिशलि के अनुसार केवल स् था, असि और आसीत् में अ और आ आगम थे।

---

१. हो एक धातु भी है, जो भू का विकास है। यहाँ हो ह् धातु का रूप है। दोनों में भेद है। ह तिङन्त है, हो कृदन्त। हो के रूपों पर प्रभाव पड़ता है।

समवप्रविभ्य: स्थ: (१,३, २२) था। श्राङ्ःस्थप्रतिज्ञानमिति वक्तव्यं था। भाष्य—आङ्: स्थः प्रतिज्ञानमिति वक्तव्यमास्ते। सकारमातिष्ठते आगमो गुण वृद्धी आतिष्ठते। विकारो गुणवृद्धी आतिष्ठते।

इससे ज्ञात होता है कि आपिशलि स् को ही धातु मानते थे। अतः, स् से हिन्दी ह् धातु मानना ही ठीक जँचता है। अस् के अनेक रूपों में अ का लोप भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है। अस् से अस्ति स्तः सन्ति, असि स्थ: थ, अस्मि स्व: स्मः आदि। अनेक क्रियारूपों और सदृश शब्दों में समानस्थित स्थिर अक्षर-तत्त्व को देखकर ही धातु की कल्पना की जाती है। अतः, हूँ, है, हैं, हो रूपों के आधार पर ह् धातु की कल्पना की जाती है।

पं० किशोरीदासजी अहै के लोप से है मान लेते हैं। इसमें आपत्ति यह की जा सकती है, तब हैं और हो के लिए अहूँ और अहो की कल्पना करनी होगी। 'अहै' (व्रजभाषा) से 'है' (खड़ी बोली) निकलने की बात मानने पर यह मानना होगा कि खड़ी बोली व्रजभाषा से निकली है। वास्तव में, अहै और है दोनों ही अस् से निकले हैं। अहै में अस् का अ वर्त्तमान है और है में स् केवल ह् के रूप में अवशिष्ट है—अ का सर्वथा लोप हो गया। यही ह् खड़ी बोली में सत्तार्थक धातु का काम करता है। 'हे' सम्बोधन-चिन्ह से भेद करने को 'है' हुआ होगा।

इसी प्रकार था, थी; थे, थीं के आधार पर थ् धातु की कल्पना भी की जा सकती है। जब वर्त्तमान के बोधार्थ त् को ग्रहण किया गया, तब थ् को भूतकालिक प्रत्यय बना लिया गया। थ् त् का महाप्राण है और त्–ह् के योग से बना है। थ् व्यञ्जन में ह् व्यञ्जन अन्तर्हित है। थ्—आ=था, थ्—ई=थी, थ्+ए = थे, थ् +ईं=थीं।

इस प्रसङ्ग में यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि कुछ विद्वान् 'था' को स्था से निष्पन्न मानते हैं। स्था का अर्थ बैठना या खड़ा होना है। स्था गतिनिवृत्ती। स्था का तिष्ठ आदेश होता है। अतः, स्था से था का निकलना ठीक नहीं जँचता। हिन्दी में थ् को धातु मान लेने से था, थे; थी, थीं की रचना स्पष्ट हो जाती है। जैसे चल्, से चला, चले, चली, चलीं, वैसे ही थ् से था, थे, थी, थीं।

उक्त विवेचन के बाद हिन्दी में काल-बोध की रीति स्पष्ट हो जाती है।

कालबोध की रीतियाँ

१. धातु और स्वर-प्रत्ययों के योग से चल, चला, चलूँ, चले, चलो आदि।

२. वर्त्तमान में क्रियामूल में त् और ह् के रूपों के योग से चलता है, चलते हैं, चलती है, चलती हैं आदि।

३. भूतकाल में क्रियामूल में त् और थ् के रूपों के योग से चलता था, चलती थी, चलते थे, चलती थीं आदि।

४. भविष्यकाल में धातु में स्वर-प्रत्ययों और ग् के रूपों के योग से चलूँगा, चलेंगे, चलेगा, चलोगे, चलेंगे आदि।

५. सातत्य वर्तमान में क्रियामूल के बाद रह् के रूपों और ह् के रूपों के योग से चल रहा हूँ, चल रहे हैं, चल रहा है, चल रहे हो आदि।

६. सातत्य भूत में क्रियामूल के बाद रह् के रूपों और थ् के रूपों के योग से चल रहा था, चल रहे थे आदि।

७. आसन्न भूत में, धातु में आ (स्त्री० ई०) और ह् के रूपों के योग से चला हूँ (चली हूँ), चला है, चले हैं, चले हो आदि।

८. सामान्य भूत में, धातु में आ (स्त्री०) के योग से एक व० चला (चली), ब० व० चले (चली) आदि।

९. पूर्णभूत में, ए० व० चला था (चली थी), ब० व० चले थे (चली थीं)।

१०. पूर्ण सङ्केतार्थ: हेतुहेतुमद्भूत में ए० व० चला होता, ब० व० चले होते।

११. अपूर्ण सङ्केतार्थ: ए० व० चलता होता, ब० व० चलते होते।

१२. सन्दिग्ध भूत: ए० व० चला होऊँगा (हूँगा), ब० व० चले होवेंगे (होंगे)।

१३. अपूर्ण भविष्य: ए० व० चलता होऊँगा (हूँगा), ब० व० चलते होवेंगे (होंगे)।

१४. सम्भाव्य भविष्य: चलूँ, चले, चलें (पुं० और स्त्री०)।

१५. सम्भावनार्थ—चलता होऊँ, चला होवे, चलते होवें (पुं०)।

इनमें प्रथम चार रीतियाँ अधिक महत्त्व की हैं। पाँच से पन्द्रह तक दिये गये रूपों का सम्बन्ध वर्त्तमान, भूत और भविष्य के भेदों से है। व्याकरण की पुस्तकों में किसी धातु की पूरी रूपावली देखी जा सकती है।

● ●

प्राचीन आर्यावर्त्त की भाषिक स्थिति

जिस आर्यावर्त्त में प्राचीनकाल में ही निरुक्त, शब्दानुसान और व्याकरण के अनेक उत्तम ग्रन्थ रचे जा चुके थे, प्रकृति-प्रत्यय का धातु और धातुज शब्दों का विस्तृत और वैज्ञानिक विवेचन हो चुका था, उसी शब्द ब्रह्म के उपासकों के देश में, संस्कृत की वंशजा, आर्यावर्त्त की आधुनिक भाषा हिन्दी में व्याकरण लेखन इतने विलम्ब से हुआ, यह विस्मय का विषय है। मध्यकाल में 'भाषा' शब्द जिस प्रकार हिन्दी के लिये चलता था, उसी प्रकार यास्क और पाणिनि के काल में भाषा शब्द संस्कृत के लिये प्रयोग मे था।[1] इस 'भाषा' का यास्क-पाणिनि आदि द्वारा अभिहित 'भाषा' से इस बात में ही साम्य था कि अपने-अपने समय मे दोनो व्यावहारिक भाषायें थी।

वाक्-सम्बन्धी आर्षमत—दैवी वाक् और मानुषीवाक्

प्राचीन ऋषियों के अनुसार वाक् के दो रूप हैं—दैवी वाक् और मानुषी वाक्। वाक् की उत्पत्ति का आर्ष सिद्धान्त इस प्रकार है। आकाश में प्रथम शब्द हुआ—उस देवीवाक् को देवो ने जना। देवी वाचम् अजनयन्त देवाः। इस देवीवाक् को ऋषियों ने श्रवण किया श्रुतियों द्वारा और उसके अर्थ का साक्षात्कार किया हृदय में। वही भाषा मन्त्र रूप में वेदों में प्रकट हुई है। इन मन्त्रों का सकलन हुआ संहिताओ में। अतः मन्त्र मूलतः दैवीवाक् हैं, देवभाषा में है। ऋषियो की भाषा वह इसी अर्थ मे है कि वह ऋषियो के माध्यम से प्रकट हुई। दैवी और मानुषी सृष्टि के भेद से वाक् या भाषा के दो रूप माने गये—दैवी और मानुषी। भाषा भाष् धातु से निष्पन्न है भाषा व्यक्ता यां वाचि। वाचा या वाक् में व्यक्त होती है भाषा। वागिन्द्रिय द्वारा व्यक्त होने पर वाक् ही भाषा कहलाती है। वाक् परापश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी-भेद से चतुर्विध है। वैखरी रूप मे जब वाक् व्यक्त हो जाती है, तब उसे भाषा कहा जाता है। इसी तुरीय (चतुर्थ) भेद को मनुष्य बोलते हैं। तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति। ऋ० १।१६४।४५

संहिताओं की भाषा दैवीवाक् है, उसमे देवताभिधान के शब्द हैं। 'तेषा मनुष्यवद्देवताभिधानम्'। इसमे दो प्रकार के अभिधानों का उल्लेख है मनुष्यवत् अभिधान और दैवताभिधान। यहाँ मनुष्यवत् का अर्थ 'मनुष्येष्विव'

---

१. 'प्राचीनकाल से आज तक निर्विशिष्ट भाषा शब्द का व्यवहार तत्कालीन बोलचाल की भाषा के लिये किया जाता रहा है।'—अपभ्रंश भाषा का अध्यापन पृष्ठ ४

किया गया है। अर्थात् 'मनुष्यों में प्रचलित और देवताओं के अभिधान में' इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीनों के मत में दो प्रकार के अभिधान थे, भाषा के दो रूप थे—एक मानुषी और एक दैवी (देवी)। मनुष्यवत् का मनुष्येषु अर्थ स्वीकार करते हुये भी मेरे मत में 'मनुष्यवत्' का 'वत्' यह संकेत करता है कि दोनों अभिधानों में बहुत सादृश्य था—वे विशेष भिन्न नहीं थे। मन्त्रों की भाषा से भिन्न अति प्राचीन काल में भाषा का एक रूप और था, जिसे मानुषी वाक् कहा गया है। उनके पारस्परिक सादृश्य के आधार पर दोनों में जो अन्तर था उसे 'वत् का अन्तर' कह सकते हैं—अर्थात् दोनों प्रायः एक-सी थीं। यह प्राचीनतम मानुषी भाषा ही परिणमित या परिवर्तित होती रही।* भरत ने इसे ही अतिभाषा कहा है ऐसा विद्वानों का मत है।[१]

मानुषीवाक् के ही निजकालीन रूप को निरुक्तकार यास्क और पाणिनि ने 'भाषा' कहा। निर्विशिष्ट 'भाषा' से बोल-चाल में प्रचलित भाषा का ही बोध होता है। उस समय उसका कोई देशवाचक रूढ नाम नहीं था। वही व्यावहारिकी भाषा थी। 'चत्वारि वाक्परिमितानि पदानि' के अनेक प्रकार के अर्थ देते हुए यह कि याज्ञिक मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और चतुर्थी व्यावहारिकी भेद मानते थे और नैरुक्त ऋक् यजु साम और चतुर्थी व्यावहारिकी भेद मानते थे।[२] मैं० स० १।११।५ के अनुसार उस समय ब्राह्मण दो भाषायें बोलते थे—तस्माद् ब्राह्मणा उभयीं वाचं वदन्ति या च देवानां च मनुष्याणां। अतः इस प्रमाण के आधार पर ब्राह्मण उस काल में देवभाषा और मानुषीभाषा दोनों बोलते थे।

मनुष्यों की इसी भाषा का जब संस्कार किया गया तब वह संस्कृता वाक् हो गयी। बाद में वह केवल संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके संस्कर्त्ता

---

१. भरत ने १७,२७ में अतिभाषा, आर्यभाषा और जातिभाषा का भेद बताया है। "उन्होंने (भरत ने) वैदिक शब्दों से युक्त भाषा को अतिभाषा, संस्कृत को आर्यभाषा और प्राकृत को जातिभाषा नाम दिया है।"—

संस्कृतं प्राकृतं चैव यत्र पाठ्यं प्रयुज्यते।
अतिभाषार्यभाषा च जातिभाषा तथैव च।—भरत

२. मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणं चतुर्थी व्यावहारिकीति याज्ञिकाः।
ऋग्यजूंषि सामानि चतुर्थी व्यावहारिकीति नैरुक्ताः (निरुक्तम्-भगवद्दत्त) पृ०

पाणिनि पूर्व भी अनेक आचार्य हुये, जिनका उल्लेख अष्टाध्यायी में हुआ है। उन सबों के नियमन और श्रम से यह संस्कृत हुई। उन अनेक महान् शाब्दिकों अथवा वैयाकरणों में अब यास्क और पाणिनि की कृतियाँ ही उपलब्ध हैं।

अतः संहिताओं की भाषा ही देवभाषा है, उसे आर्षभाषा भी कह सकते हैं। जिसे हम लौकिक संस्कृत कहते हैं वह मानुषी भाषा है, देव भाषा नहीं। इसी को भरत ने आर्य भाषा कहा है। देवभाषा से वह कितनी सदृश है और कितनी पृथक् है, यह इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि ने वैदिक भाषा का स्वतन्त्र व्याकरण रचने की आवश्यकता नहीं समझी। वे भाषा का व्याकरण रचते समय सूत्रों में वैदिक भाषा के विशिष्ट प्रयोगों को देखकर उनका भी उल्लेख कर देते हैं। पाणिनि 'भाषायां' का अर्थ है संस्कृत मे और 'छन्दसि' का अर्थ है वैदिक भाषा में। देवताभिधान भी मनुष्यवत् था, अतः जहाँ अन्तर है उसी का निर्देश किया गया। यास्क ने भी भाषा को अन्वध्याय (वेद की भाषा) से भिन्न माना है। 'इव' का उपमार्थ में प्रयोग बताते हुए वे कहते हैं—वेति भाषायां चान्वध्यायं च। (इव यह भाषा में और अन्वध्याय में) भाषा में 'न' का प्रतिषेधार्थ में और अन्वध्याय में प्रतिषेधार्थ और उपमार्थ मे, उभयार्थ में, प्रयोग मिलता है। अन्वध्याय से संहिता की भाषा अभिप्रेत है क्योंकि प्रमाण में प्रस्तुत उद्धरण ऋग्वेद से है। अतः यास्क के अनुसार 'भाषा' और अन्वध्याय ये दो रूप थे।

ब्रह्मावर्त की भाषा का महत्त्व

अब यह विचारणीय है कि वह मानुषी 'भाषा' आर्यावर्त के किस भाग विशेष की या वर्गविशेष की भाषा थी? मेरे मत मे वह आर्यान्तर्गत 'ब्रह्मावर्त' नामक भू-भाग की भाषा थी। यहीं की भाषा का संस्कारयास्कादि आचार्यों ने किया था। इसी भूमि को या इसकी चतुर्दिक भूमि को सारस्वत प्रदेश भी कहा गया है। मनु ने इसी पुण्यभूमि ब्रह्मावर्त्त की महिमा गायी है और यहीं के अग्रजन्माओं (ब्राह्मणों) के सकाश से, उनके चरित्र से पृथ्वी के सर्व मानव शिक्षा लें, यह मनु ने आदेश दिया है।

एतत् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

यह सरस्वती-दृषद्वती-देवनदी के बीच स्थित [illegible] कहा गया है।[1] इस देश को ब्रह्मर्षि देश भी कहा गया है, जिसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन पड़ते थे।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशोवै ब्रह्मावर्तादनन्तरः॥ मनु २।१९

सम्पूर्ण आर्यावर्त आर्यों से आवर्त था, पर ब्रह्मावर्त विशेषतः चरित्रवान् ब्राह्मणों के कारण अधिक महिमावान् और पूज्य था। ब्रह्म का अर्थ वेद और ब्राह्मण प्रसिद्ध है। संस्कृत में जिस समस्त पद में ब्रह्म शब्द आता है, वह तादृश वस्तुओं में अथवा उस कोटि के पदार्थों में श्रेष्ठ माना जाता है।[2] देशों में श्रेष्ठ ब्रह्मावर्त।

कुरुक्षेत्र तो धर्मक्षेत्र था ही। सम्पूर्ण ब्रह्मावर्त पवित्रतम देश माना जाता था। वहाँ की भाषा—ब्राह्मणों की भाषा—ब्रह्मर्षियों की भाषा—ही काल पाकर संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रदेश की भाषा आज भी राष्ट्रभाषा है, भारत की राजभाषा है। प्राचीनकाल में भी इस ब्रह्मावर्त की भाषा की ही विशेष सम्मान्य थी। इसी के एक भाग की, शूरसेन की प्राकृत प्राकृत-काल में शौरसेनी नाम से प्रसिद्ध हुई। १२ वीं शताब्दी के बाद यहीं की ब्रजभाषा प्रसिद्ध हुई। पुराकाल से ही, मनु के समय से ही, ब्रह्मावर्त ही आर्यों का धार्मिक केन्द्र था, धर्मक्षेत्र था, महाभारतकाल में भी यह राज-शक्ति का भी केन्द्र बन गया था। देश का धर्मपीठ, विद्यापीठ और शक्तिपीठ ब्रह्मावर्त ही था। [illegible] है। महाभारत युद्ध के विजेता सम्राट् युधिष्ठिर के राज्यारोहण के बाद यहीं की भाषा (संस्कृत) का सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचार प्रसार हुआ। [illegible] प्रतीची और [illegible] की [illegible] है। [illegible] ब्रह्मावर्त की ही [illegible]

था। हिन्दी मध्यदेश की भाषा है। हिन्दी के साथ उदीची और दक्षिण का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि उसका क्षेत्र संस्कृत के समान विशाल और व्यापक नहीं था। इसके पश्चिमी और पूरबी भेद मिलते हैं। संस्कृत का चतुर्दिक प्रसार था अतः उसके विविध दिशाओं के प्रयोगों का उल्लेख हुआ। पाणिनि शालातुरीय थे, इन्हें भी पाटलिपुत्र की शास्त्रकार परीक्षा में सम्मिलित होना पड़ा था। भाषा का उदीच्य, मध्य और प्राच्य भेद उल्लिखित है। पर 'भाषा' का देशवाचक नाम प्राकृत काल के पूर्व नहीं मिलता। प्रादेशिक नाम प्राकृतों के साथ ही जुड़े हुए हैं। महाभारत युद्ध के कुछ पूर्व से लगभग १००० वर्ष वि० पू० तक इन्द्रप्रस्थ का महत्त्व बना रहा। सातवीं शताब्दी वि० पू० के आस पास ही प्राच्य मगध का ऐश्वर्य बढ़ा, इसके पूर्व ब्रह्मावर्त्त ही आर्यावर्त्त का केन्द्र था।

महाभारत के पूर्व अर्थात् द्वापरान्त तक आर्यजीवन यज्ञमय होने के कारण और यज्ञविधान में वेद मन्त्रों का विनियोग होने के कारण, वैदिक वाङ्मय का विशेषतः ब्राह्मणों द्वारा श्रद्धापूर्वक अध्ययन और संरक्षण होता रहा। अध्ययन या अध्याय का एक ही अर्थ वेदों का पाठ है।[1] इसके बाद जब भगवान् कृष्ण द्वारा भक्तिमूलक सरल धर्म का प्रतिपादन हुआ, तब से वैदिक यज्ञ और कर्मकाण्ड के प्रति उत्साह मन्द हो गया। वेदों का व्यास करने (आज की भाषा में संकलन-सम्पादन) के बाद कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास कहलाये, पर जान पड़ता है कि वे उसके बाद कृष्ण, जब भागवतधर्म का उदय हुआ तब वेदव्यास उस नवोदित धर्म के सबसे बड़े पोषक और प्रचारक हो गये। वेदों का उपबृंहण करने के लिए, व्यास ने महाभारत पुराणादि की रचना कर हमारे धर्म को वह रूप दिया, जो प्रायः उसी रूप में अब तक विद्यमान है। नाराशंसी, गाथा, इतिहास-पुराण के रूप में लौकिक संस्कृत में विपुल साहित्य रचा गया। प्राचीन आर्य ग्रन्थों को भी लौकिक संस्कृत में इसी काल में नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया। पुराणों को नवीकृत इसी काल में भगवान् कृष्ण के नाम पर भागवत धर्म चला, पर गीतोपदेश द्वारा उन्होंने उपनिषदों को भी पुनरुज्जीवित किया। वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर वैदिक ज्ञानकाण्ड—वेद के स्थान पर वेदान्त की प्रतिष्ठा बढ़ी। यज्ञ और योग की नवीन व्याख्या कृष्ण ने की। यह सब कृष्ण ने तत्कालीन 'भाषा' (संस्कृत) में किया। उस व्यावहारिकी भाषा में ही उन्होंने कुरुक्षेत्र में मौखिक उपदेश

---

१. अध्यायः—(अधि+इ+घञ् पढ़ना, अध्ययन, विशेषतः वेदों का।

दिया। कृष्ण का कैशोर शूरसेन प्रदेश मे ही बीता था। महाभारत कृष्ण भी द्वैपायन (गंगा यमुना के अन्तर्वर्ती किसी द्वीप के निवासी) थे। गीतावक्ता भी कृष्ण, महाभारतकार भी कृष्ण, गीताश्रोता अर्जुन भी कृष्ण—ऐसे तीन ब्रह्मावर्त्तीय तेजस्वी महापुरुषो की वाणी, प्रतिभा और शक्ति से नवीन धर्मचेतना जाग्रत हुई। योगेश्वर की योगशक्ति व्यास की शब्दशक्ति और वीर अर्जुन की क्षात्रशक्ति तीनों का अपूर्व संयोग कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि पर हुआ। वेदों के व्यासकर्त्ता, महाभारतकार और पुराणकार के रूप में व्यास देव ही लौकिक संस्कृत के सर्वोच्च लेखक थे, जिन्होंने वर्तमान युगारम्भ-काल में भारतीय आर्यजीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके बाद वैदिक परम्परा को स्वीकार करते हुए पुराकालीन देवों और ऋषियों के आख्यानों को नवीन रूप मे प्रस्तुत करने की आवश्यकता का बोध हुआ। अतः वैदिक काल की गाथाओं का, आख्यानों का, कायाकल्प कर नवीन रूप में पुराणों की रचना हुई। पुराण का शब्दार्थ तो पुराना है, पर इसका निर्वचन है 'पुरानवम्'—पुरा को नव रूप जिसमें प्राप्त हो, वह पुराण। प्राचीन 'भाषा' के स्वरूप के ज्ञान के लिए हमें उसका सम्बन्ध संहिताओं की भाषा से किस प्रकार का था, यह भी जानना आवश्यक है। लौकिक संस्कृत की पूर्वज भाषा कैसी थी, इसे जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। वैदिक संहिताओं की भाषा से वह कितनी मिलती जुलती थी, यह बताना कठिन है। पर वह लगभग वैसी ही थी, ऐसा अनुमान पारसियों के धर्मग्रन्थ के गाथा अश के कुछ छन्दों (जन्द-अवस्ता) के आधार पर किया जा सकता है। वह भाषा छान्दस भाषा की समीपी भाषा है। अथर्ववेद की किसी शाखा से पारसियों (ईरानियों) के धर्म का सम्बन्ध जान पड़ता है। इस क्षेत्र में विशेष अनुसंधान अपेक्षित है।

वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त अनेक व्याख्यान ग्रन्थ भी हैं, जिनकी भाषा पर वैदिक भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। याज्ञिकों ने 'चत्वारि वाक्परिमितानि-पदानि' से मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और व्यावहारिकी भाषा का ग्रहण किया है, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। इसका क्या अभिप्राय है, क्या कल्प और ब्राह्मण की भाषा मन्त्र की भाषा से किञ्चित् भिन्न है? क्या इस भेद की ओर ही इसमे संकेत है? कल्प और ब्राह्मण ग्रन्थों को एक प्रकार से हम संहिताओं के व्याख्यान ग्रन्थ कह सकते हैं।

वैदिक भाषा के व्याकरण में और एक ही शब्द के वैदिक और लौकिक अर्थ में कहीं-कहीं बड़ा अन्तर पड़ गया है। कितने वैदिक शब्द अपने मूलार्थ में लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त नहीं हुए, उनके वैसे प्रयोग परवर्त्ती काल में

हो गये। विशिष्ट शब्दों का अर्थसंकोच और अर्थविस्तार हुआ है। शब्दों की ऐसी गति सभी प्राचीन भाषाओं में होती है। हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो वैदिक रूपों के निकट हैं (यथा—वाल—वाल, बरछा—वृश्च।) अनेक वैदिक धातुयें संस्कृत में नहीं मिलतीं; उपसर्गों के प्रयोग में वैदिक रीति भिन्न है, पर इन भेदों के रहते हुए दोनों में सादृश्य भी बहुत है।

कोई भाषा कालान्तर से बदल जाती है। दीर्घकाल बाद संस्कृत भाषा भी लोकभाषा से दूर पड़ती गयी और अन्त में वह समाज के निम्नस्तर के जनों की सुबोध नहीं रह गयी। महावीर बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व यह स्थिति अवश्य ही प्राच्य देशों में थी, अन्यथा उक्त मतों के प्रवर्तक धर्मनेताओं ने अपने मतों के प्रचार में लोकभाषाओं का माध्यम ग्रहण नहीं किया होता। पालि और अर्धमागधी का इसी कारण से अभ्युदय हुआ। इन भाषाओं को प्राकृत कहते हैं—चूँकि वे प्रकृत भाषा से निकली थीं, प्रकृतादागतः प्राकृतः। प्रकृति का अर्थ है असंस्कार रूप। भाषा के दो रूप हैं—असंस्कार रूप या प्रकृत रूप और संस्कारयुक्त या संस्कृत रूप। उस प्रकृति रूप से आया रूप प्राकृत रूप है। यदि संस्कृत रूप को 'स्टैन्डर्ड' मानें तो ये प्राकृत रूप 'गिरे हुये' हैं। संस्कृत को नाट्यशास्त्र १७/२९ में राज्य में प्रतिष्ठिता और संस्कार-पाठ्य संयुक्ता' कहा गया है। संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सम्यग् राज्ये प्रतिष्ठिता। संस्कृत के पण्डित संस्कृत शब्द को ही साधु शब्द मानते हैं। शब्द का साधु रूप एक होता है, उसके अपभ्रंश अनेक हैं। 'गो' साधु शब्द हैं, गावी, गोणी, गोता गोपोतालिका आदि उसके बहुतेरे अपभ्रंश हैं। महाभाष्यकार के समय के ये विविध रूप हैं। साधु शब्द सर्वलोक विदित होते हैं और अप शब्द प्रति देश में भिन्न होते हैं, अतः साधु शब्द का ही ग्रहण उचित है।[१] किसी देश की प्रकृत भाषा का संस्कार कर के ही संस्कृत बनी थी, पर वह सर्व लोक विदित हो चुकी थी, राज्य में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, किन्तु प्रत्येक भाग की प्राकृत अपनी प्रकृत भाषा से ही आगत होने पर भी, सर्वलोक विदित नहीं थी। यही कारण है कि प्राकृतों के स्थानीय नाम देशभेद से मिलते हैं, पर

---

१. हरदत्त का कथन है—

यद्यपि गाव्यादयोऽपि लोके विदिताः तथापि न ते सर्वलोकविदिताः प्रतिदेशं भिन्नत्वादय शब्दानाम्।

अर्थात् गावी, गोणी गोता लोक मे विदित है (लोग जानते हैं) पर सब लोग सर्वत्र नहीं जानते, अतः गो ही चलना चाहिए।

संस्कृत के नहीं। अर्धमागधी शौरसेनी प्राकृत के समान संस्कृत के नाम नहीं मिलते। बुद्धदेव की देशभाषा (मातृभाषा) और महावीर तीर्थंङ्कर की भाषा को अर्धमागधी कह सकते हैं, क्योंकि उन दोनों का प्रवचन मुख्यतः काशी राज्य, कोशल, श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह आदि स्थानों में हुआ था। इस क्षेत्र के अन्तर्गत आज पूरबी-अवधी, भोजपुरी और मगही बोलियाँ बोली जाती हैं। गोरखपुर से पटना डिवीजन की लोकभाषा (प्राकृत) में ही बुद्धदेव और महावीर ने उपदेश दिया होगा। इन महापुरुषों के पूर्व उन क्षेत्रों की भाषा का क्या रूप था, यह जानने का अब तक कोई साधन नहीं मिला है। उसके पूर्व का जो भी साहित्य उपलब्ध है, वह संस्कृत में है। बौद्ध धर्म-ग्रंथों की भाषा पालि कहलाती है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ भी विवादास्पद है। पालि का अर्थ पंक्ति है। यह पल्ली से भी निकला हो सकता है। यह नाम भाषा का क्यों पड़ा ? इन भाषाओं में जब जैन-बौद्ध धार्मिक ग्रन्थ लिखे गये, तब यह देखकर कि उनका सम्बन्ध अवैदिक धर्मों से है, वैदिकों ने अर्धमागधी या पाली में रचना नहीं की। वे संस्कृत को ही अपनी भाषा समझते थे—और उसी में उन्होंने रचनायें कीं। प्राकृतों को बौद्ध-जैन धर्मों द्वारा माध्यम बना लिए जाने पर ही बढ़ने का अवसर मिला, अशोक के काल में तो उसे राजभाषा का पद भी प्राप्त हो गया। उसके शिलालेखों में समकालीन प्राकृतों का प्रयोग हुआ है। देश के अन्तर्गत नये धर्मों के उदय के कारण आन्दोलन था, बुद्ध और जैन अहिंसामूलक वैराग्य-प्रधान धर्मों के उदय के बाद भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर विदेशियों के आक्रमण हुये। ईरान के दारा (दारायवहु) और यवनान के अलिकसुन्दर (सिकन्दर) ने आक्रमण करने का साहस किया—जब तक वैदिक धर्म प्रबल था, किसी विदेशी ने आर्यावर्त्त के वायव्य सीमान्त पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया था।

प्राकृतों के उदय और विकास में बौद्ध सम्राटों—अशोक और कनिष्क का सबसे अधिक योगदान है। अनेक स्थानीय राजाओं ने जैन धर्म की दीक्षा ली थी, किन्तु बौद्ध धर्म को शक्तिशाली सम्राटों ने स्वीकार कर प्रचारित किया। राजाश्रय पाकर अवैदिक धर्म फलने-फूलने लगे और वे वैदिक धर्म के प्रतिद्वन्दी हो गये। बुद्ध के ५-७ सौ वर्ष बाद बौद्ध धर्म की बाढ़ रुक गई, उसका वेगपूर्ण प्रवाह मन्द पड़ गया, और वैदिक धर्म ने पुनः अपना सिर उठाया। किन्तु अब स्वयं वैदिक धर्म अपने मूल रूप से काफी दूर पड़ चुका था। वह शिव और विष्णु को महादेव के रूप में स्वीकार कर चुका था। इन्द्र,

मरुत् वरुण, भग आदि देवों के स्थान पर शिव और विष्णु प्रतिष्ठित हो चुके थे। बाद में रामायण और महाभारत ने ऐतिहासिक महापुरुषों में, पुरुषोत्तमों मे, राम और कृष्ण मे, ईश्वरत्व का आरोप किया। विष्णु का उन्हें अवतार मानकर, उन नरविग्रह रूप भगवानों की उपासना को महत्त्व मिला। बुद्धदेव और महावीर को उनके अनुयायियों ने भगवान् रूप में स्वीकार किया था—कदाचित् उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर वैदिकों ने भगवान् कृष्ण और भगवान् राम की उपासना पर बल दिया। त्रेतान्त के राम और द्वापरान्त के कृष्ण विष्णु के अवतार हैं—यह मत वैष्णव भक्ति का अंग बन कर आया। कृष्ण का भागवत धर्म भगवान् के निष्काम कर्मयोग का नहीं, भक्तियोग का आधार लेकर आया। वैदिक धर्म के इस परवर्ती रूपान्तर में भक्ति के साथ ज्ञान और योग का भी समन्वय था। योगेश्वर कृष्ण ने योगी को, भक्तों में ज्ञानी को, श्रेष्ठ माना। किन्तु भागवत धर्म के मूल में भक्ति है—यह प्राचीन मान्यता है। शैवमार्ग में भी वेदान्त और योग को महत्त्व मिला। इसी के साथ शाक्त मार्ग भी विकसित हुआ। मन्त्र के साथ तन्त्र-शक्ति का योग हुआ। इन सभी धार्मिक और दार्शनिक मतों का पोषक साहित्य संस्कृत मे रचा गया। इस प्रकार वैदिक धर्म में पुनः जागरण आया। भिक्षु-संघो के सुदृढ संगठन और श्रमणों के धर्मोत्साह के फलस्वरूप बौद्ध धर्म ने भारतवर्ष की चतुः सीमा के बाहर भी प्रवेश किया। पर वह अपनी जन्मभूमि ही में वैदिक धर्म के साथ प्रतियोगिता और संघर्ष में पराजित हो गया। प्राचीन वैदिक धर्म भी अब इतना रूपान्तरित हो गया था कि उसे पौराणिक धर्म ही कहना ठीक है। स्मृति-पुराण, उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के अतिरिक्त रामायण-महाभारत का प्रभाव इतना अधिक बढ़ा कि वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन शिथिल हो गया। पुष्यमित्र के समय से वैदिक धर्म की लहर फिर से उठी और क्रमशः वेगवती हो गयी। संस्कृत का पुनरुत्थान हुआ, वह काश्मीर से केरल तक, पंचनद से बंग तक—सभी भागों के आचार्यों, महात्माओं और विद्वानों के विचारो का वाहन बन गयी।

इस काल मे प्राकृतो मे भी लोक साहित्य रचा गया। पहले उसमें अवैदिक धर्मों का साहित्य रचा गया था, अब उसमें प्राकृत जन के मनोरंजनार्थ कथा-साहित्य, शृंगारी काव्य, नाटक आदि भी रचे जाने लगे। गुणाढ्य की वड्डकहा, हाल की सतसई, राजशेखर की कर्पूर मंजरी आदि प्राकृत के प्रसिद्ध लोक काव्य हैं। फिर इसमे भी एक रूप को सार्वदेशिक या महाराष्ट्री बनाने का प्रयत्न हुआ। वैयाकरणों ने इसके व्याकरण को, संस्कृत वर्णमाला

उद्वेग	उव्वेग्र	उद्बेग
सहोदर	सहोग्रर	सहोदर
योगेश्वर	जोएसर	जोगेसर
प्रियतम	पिम्रग्रय	प्रीतम
उपाय	उम्राय-उम्राएँ	उपाय
नदी	नई, नई	नदी
इन्द्रिय	इदि	इन्द्री

शब्द के प्रारम्भ में ण आधुनिक भाषाओं में नहीं मिलता, किन्तु अपभ्रंश में विद्यमान हैं।

निविड़ का णिवड, नूपुर का णोउर, नष्ट का णट्ठ, नख का णख नाम का णाउ, निर्वाण का णिव्वाण।

मध्य में अथवा अन्त में ण तो सैकड़ों शब्दों में है, पर शब्द के आदि में ण वर्तमान हिन्दी के किसी रूप में नहीं मिलता।

अपभ्रंश, प्राकृत, और देशी भाषा शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। डा० हीरालाल जैन का मत है कि अपभ्रंश को ही देशभाषा और देशभाषा को अपभ्रंश नाम से साहित्याचार्य समझते और कहते आये हैं। व्याकरणाचार्य जिस भाषा को अपभ्रंश कहते हैं उसी भाषा को उसमें रचना करनेवाले देशी भाषा कहते हैं।" अपभ्रंश के सम्बन्ध में डा० बाहरी का कथन है कि "संस्कृत वैयाकरणों ने संस्कृत से भिन्न समस्त भाषाओं को अपभ्रष्ट कहा है। राजशेखर के अनुसार समस्त मरुभूमि (मारवाड़), टक्क (पूर्वी पंजाब) और भादानक मे शुद्ध अपभ्रंश काव्य का प्रचार था'''इस प्रसंग मे यह भी ध्यान रहे कि राजस्थानी को अपभ्रंश की जेठी बेटी कहा गया है।'''मार्कण्डेय और इतर आचार्यों के अनुसार अपभ्रंश के तीन रूप थे—नागर, उपनागर और व्राचड नागर गुजरात की, उपनागर राजस्थान की और व्राचड सिन्ध की बोली थी। '''अतः हम अपभ्रंशो को हिन्दी और प्राकृत के बीच की स्थिति नही मानते।'''अतः अपभ्रंश पश्चिम की एक प्राकृत थी, और उसका योग 'आभीरादि' की बोलियो के विकास से ही सम्भव है। आगे चलकर अपभ्रंश के दो रूप विकसित हुये—डिंगल और पिंगल। डिंगल को डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी ने अनियमित, असंस्कृत और गँवारू भाषा कहा है। राजस्थानों ने इसकी परम्परा को सुरक्षित रखना चाहा, किन्तु तब तक यह बोल-चाल

की भाषा से दूर, मात्र कृत्रिम भाषा बनकर रह गयी, अतः राजस्थानी-मिश्रित ब्रजभाषा (पिंगल) अथवा विशुद्ध ब्रजभाषा को साहित्य में स्थान मिलने लगा। अर्थात् अपभ्रंश को ब्रजभाषा और राजस्थानी की पूर्वस्थिति तो माना जा सकता है, किन्तु उसे सारे हिन्दी प्रदेशों की बोलियों की जननी नहीं माना जा सकता। बल्कि हमें तो लगता है कि खड़ी बोली पर भी इसका प्रभाव नही के बराबर है।"

इस लम्बे उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि अपभ्रंशों का प्रभाव खड़ी बोली पर नही के बराबर है। मेरा भी यही मत है। जो लोग आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के पूर्व रूपों को बताने में अपभ्रंशों को [illegible] चाहते हैं, वे यह जानते हैं कि ऐसी अपभ्रंश भाषा किसी काल में नहीं लिखी, जिससे खड़ी बोली के शब्दरूप विकसित हुये हैं। [illegible] में भी राजस्थानी-पन प्रमुख है, ब्रजभाषा गौण है, यदि ब्रजभाषा के कुछ रूप मिलते भी हैं तो उस पश्चिमी क्षेत्र के हैं, जिसकी बोलियाँ [illegible] राजस्थानी की पूर्वी सीमा से सटी हुई है। जिसे पिंगल [illegible] का [illegible] नाम दिया है, वह है कवि-समाज में मान्य अपभ्रंश-युक्त राजस्थानी का पूर्वी रूप। अपभ्रंश काव्य या अपभ्रंश-मिश्रित काव्यों की रचना प्रायः राजपूत राजाओं की सभा के चारण-भाटों ने ही की है और वीरों के [illegible] जीवन के युद्ध-वर्णन-पूर्ण काव्य रचते थे, अतः वे अपभ्रंश के [illegible] [illegible] की डिंगल भाषा का प्रयोग करते थे। १२ वीं शताब्दी के बाद भाषा का यह रूप चलता था, जो आधुनिक रूप का पूर्व रूप है। इसके उदाहरण यत्र-तत्र पुरानी पुस्तकों में मिल जाते हैं।

ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध हुआ है तो वह उक्तिव्यक्ति प्रकरण ही है और चूंकि यह तत्कालीन बोल-चाल की लोकभाषा को प्रस्तुत करता है अतः बहुत महत्वपूर्ण है।"

पूरबी हिन्दी के तत्कालीन रूप पर इस ग्रन्थ द्वारा क्षीण प्रकाश पड़ता है। खेद है कि पश्चिमी हिन्दी के खड़ी बोली या शुद्ध ब्रजभाषा के १२ वी शती के रूप पर किसी अन्य ग्रन्थ का अबतक पता नहीं लगा। उस समय हरियाना से दिल्ली तक की भूमि (कुरुक्षेत्र) में, ब्रजभूमि (शूरसेन प्रदेश) में और अवध में (कोशल) मे भाषा का क्या स्वरूप था, जब तक इसका परिचय नहीं मिलता, हिन्दी भाषा (आधुनिक अर्थ में) का इतिहास नहीं लिखा जा सकता। बारहवी शताब्दी के बाद हिन्दी क्षेत्र मे मुसलमानो का प्रवेश हो गया था और लाहौर से उनके कदम दिल्ली की ओर और फिर उसके दक्षिण और पूर्व की ओर बढ़ते जा रहे थे। अतः हमें हिन्दी (खड़ी बोली) के इतिहास को समझने के लिये मुस्लिम शक्ति के क्रमिक विस्तार का इतिहास देखना होगा। यहाँ मुस्लिम इतिहासकारो के विवरण से कुछ सहायता मिलती है।

पहली बात जो महत्वपूर्ण है कि किसी हिन्दी के कवि ने अपनी भाषा का कोई नाम नही दिया। वे उसे अपभ्रंश नही कहते हैं, मात्र भाषा कहते हैं। पिंगल, डिंगल अपभ्रंश आदि नाम चारण-भाटों की रचनाओं में ही मिलते हैं। हमारे कवि तो अपनी भाषा को 'भाषा' ही कहते हैं, चाहे वह अवधी हो या ब्रजभाषा।

संसकिरत पंडित कहै बहुत करै अभिमान।
भाषा जानि तरक करै ते नर मूढ़ अजान।—कबीर

सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ।—सूर

भाषा बद्ध करब मैं सोई।—तुलसी

रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश।—केशव

ताहीं सो यह कथा जथा मति भाषा कीनी।—नन्ददास

जब 'भाषा' शब्द का, निर्विशिष्ट 'भाषा' का प्रयोग होता है तो अभिप्राय होता है किसी देश में बोल-चाल में प्रयुक्त होनेवाली भाषा। भाषा के दो प्रकार के विशेषण भारत मे चलते थे, गौणी विशेषण यथा संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा, अपभ्रंश भाषा, अथवा स्थानीय देशसूचक विशेषण,

शौरसेनी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत, पैशाची प्राकृत आदि। 'भाषा' कहने से तो व्यवहार में आनेवाली लोकभाषा ही समझी जाती थी। इस विशाल देश के बड़े-बड़े भागों को भी देश कहा जाता था। मुसलमानों का पश्चिमोत्तर सीमान्त की ओर से आक्रमण हुआ और सफल होने पर उन्होंने अपना शक्तिकेन्द्र लाहौर में स्थापित किया। महमूद गजनवी ने जब पंजाब पर आधिपत्य स्थापित किया (लगभग १०२५) तब से ही वे भारत के ऐसे भाग से निकट सम्पर्क मे आये जहाँ हिन्दी भाषा के एक रूप से उनका परिचय हुआ।* कहा जाता है कि उसके आक्रमण का मुख्य ध्येय 'हिन्द की दौलत' को लूटना ही था, पर इस विजय का यह परिणाम तो अवश्य हुआ कि पंजाब गजनवी साम्राज्य का अंग बन गया। इस पंजाब के द्वार को खोलने के बाद मुसलमानों का भारत-भवन के भीतरी कक्ष और आँगन में प्रवेश हो सका। प्रायः गजनवी-वंश के पंजाब की भूमि पर शासन को ऐतिहासिक महत्व नहीं देते और वे मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध के बाद ही भारत में मुसलमानों के प्रभाव का आरम्भ मानते हैं, किन्तु यह धारणा ठीक नहीं। पृथ्वीराज रासो मे सहस्रों फारसी-अरबी-तुर्की के शब्दों का मुसलमानों और फौजों-हथियारों के प्रसंग में प्रयोग इस बात को पुष्ट करते हैं कि ये शब्द उस समय भी जनता में प्रविष्ट हो चुके थे और उनके सर्वथा सुबोध होने के कारण ही चन्द ने अपने महाकाव्य में उनका व्यवहार किया था।

भारत में सूफी सिद्धान्त (तसव्वुफ) के प्रचार के इतिहास से इस पर कुछ प्रकाश पड़ता है कि इस देश में सूफी फकीरों ने किस प्रकार अपने मत का यहाँ की जनता के बीच प्रचार किया। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कुछ पहले ही प्रसिद्ध सूफी फकीर ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती इस देश में आये—और उन्हें 'सुलतान-उल-हिन्द' का विरुद प्राप्त हुआ। वे ११६० ई० मे लाहौर पहुँचे। यहाँ उन्होंने दाता गंज बख्श की कब्र पर कुछ दिन ठहर कर ध्यान किया। वहाँ से वे दिल्ली और बाद में पृथ्वीराज के राज्य मे अजमेर पहुँचे। इस मुस्लिम सूफी फकीर के बढ़ते हुये प्रभाव को देखकर अजमेर के राजा से उसे निर्वासित करने का अनुरोध किया गया पर कहा जाता है—कि नि

---

* महमूद गजनवी (९७१-१०३०) उसने भारत के अशान्त कर लूटा। १०१८ ई० में उसने मथुरा और १०२० का ध्वंस किया। १०२६ ई० मे हिन्दूशाही राज्य, अफगानिस्तान तक फैला था, सदा के लिये समाप्त हो

सन का प्रादेश ले जानेवाला रामदेव नाम का अजमेर का पुरोहित ही चिश्ती के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनका चेला बन गया। भारत के सूफी फकीरों में अजमेर के इस सूफी फकीर का बड़ा नाम है और उनके कारण अजमेर शरीफ मुसलमानों का सबसे बड़ा तीर्थ माना जाता है। इन फकीरों के पास हिन्दू-मुसलमान सभी आध्यात्मिक तत्त्व की प्राप्ति के लिये आते थे और इनके प्रवचनों से लाभ उठाते थे। दाता गंज बख्श चिश्ती साहब से पहले ही हिन्द आये थे और लाहौर मे उनका स्थान था। इससे यह जाहिर है कि जहाँ तलवार की ताकत से मुसलमानों की सल्तनत कायम हुई, वहाँ सूफी फकीरों ने भी इस्लाम के उदार रूप के प्रचार में मदद दी।

गजनवी शासकों ने पजाब पर १७० वर्ष तक राज्य किया। उनके राज्य-काल में सैकड़ों प्रतिभाशाली फारसी (ईरानी), तुर्की, अफगानी यहाँ शासन, सेना, विद्या, धर्म आदि क्षेत्रो मे सेवा के उद्देश से आये। सूफी फकीरों ने लाहौर, दिल्ली, अजमेर, बदायूँ आदि हिस्सो में अपने मत का प्रचार किया। भिन्न-भिन्न मुस्लिम देशो से आगत मुसलमानों की भाषा भिन्न-भिन्न होने के कारण उनमे परस्पर व्यवहार की एक शिष्ट भाषा की आवश्यकता थी। फारसी से यह काम चल रहा था पर जब हिन्दुस्तान मे ऐसे मुसलमानों की संख्या बढ़ी, जिनका जन्म यही हुआ था, जिनके माँ-बाप यही बस चुके थे और अब हिन्द की सरजमीन पर जिन्हे जीना-मरना था, और जिन्हे यहीं की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा से दैनिक व्यवहार में सम्पर्क के लिये बातचीत करना आवश्यक था, तब दोनों समुदायों के बीच व्यवहार की भाषा कोई हिन्दवी भाषा ही हो सकती थी। इसी मेल-जोल और दैनिक व्यवहार के फलस्वरूप उस हिन्दवी का जन्म हुआ, जो प्रारम्भ से ही फारसी-अरबी या मुस्लिम शब्दों के मिश्रण से फली-फूली। यह भाषा लाहौर के पास-पड़ोस की ही देश भाषा थी, जिसे पहले वहाँ के हिन्दू बोलते थे, पर मुसलमानों के पैर जमने और गजनवी हुकूमत कायम होने के बाद, मुस्लिम शब्दो के अधिक ग्रहण के बाद अपना रूप तेजी से बदल रही थी। मुस्लिम शासन, सेना, धर्म सभ्यता-संस्कृति से सम्बन्धित सैकड़ो शब्दों का प्रवेश १२ वी सदी से ही प्रारम्भ हुआ और जब पृथ्वीराज की पराजय के बाद दिल्ली पर गोरी वंश का शासन स्थापित हुआ, तब लाहौर से दिल्ली का महत्व बढ़ गया। पहले 'हिन्दवी' का व्याकरणिक आधार उस पूर्वी पंजाब की बोली थी, जिसे अब हरियाना राज्य कहते हैं। यही पर मुसलमान हिन्दवी से परिचित हुये। इसके बाद उनके कदम ज्यों-ज्यो पूरब-दक्खिन की ओर बढ़ते गये, वे दिल्ली के पास-

पड़ोसवाले रूप से भी परिचित हुये। गोरियों ने अपनी राजधानी दिल्ली में कायम की। पंजाब में गजनवी शासन मुहम्मद गोरी के प्रहार से समाप्त हुआ था। पंजाब अधीन कर लेने के बाद अब मुहम्मद गोरी का मुकाबला अजमेर और दिल्ली के शक्तिशाली चौहान राजा पृथ्वी राज से अनिवार्य हो गया। पृथ्वीराज की हार का फल यह हुआ कि गोरी का आधिपत्य आर्यावर्त्त के पवित्र भाग ब्रह्मावर्त्त पर हो गया। उस समय कन्नौज में गाहड़वाल वंश का राज्य था और वहाँ के राजा जयचन्द का पृथ्वीराज से शत्रुभाव था। जयचन्द को छोड़कर अब अनेक राजपूत राजाओं ने पृथ्वी राज की सहायता की, राजपूतों ने युद्ध में अपने शौर्य का अद्भुत परिचय दिया, पर उनकी पराजय हुई। यह भारत का—या आर्यावर्त्त का—या हिन्दी-क्षेत्र का प्रथम निर्णायक युद्ध था। वस्तुतः यह ११९२ ई० का मुहम्मद गोरी—पृथिवीराज का, थानेसर का युद्ध ही शुद्ध हिन्दी क्षेत्र को पराधीन बनानेवाला पहला युद्ध है। यही युद्ध पृथ्वीराज रासो काव्य का विषय है।

इसके बाद गुलामवंश का राज्य आरम्भ होता है। कन्नौज में गाहड़वाल वंश का, जयचन्द का राज्य था। उसका राज्य काशी तक विस्तृत था। जयचन्द ने मुहम्मद गोरी के विरुद्ध युद्ध में पृथ्वीराज का साथ नहीं दिया था, पर इसका कुफल उसको शीघ्र ही भोगना पड़ा। गोरी ने ११९४ ई० में उसके राज्य पर भी आक्रमण किया और उसे पराजित कर अपना प्रभुत्व उसके राज्य पर भी स्थापित कर लिया। बीच-बीच में पराजित हिन्दू राज्यों में विद्रोह हो जाता था, कभी-कभी मुसलमानों का शासन उखड़ भी जाता था, पर यह सत्य है कि १२०० ई० के बाद सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र हिन्दू क्षेत्र नहीं रह गया।

बारहवी शती के बाद मुस्लिम स्रोतों से हमारी देशभाषाओं के सम्बन्ध मे जो विवरण प्राप्त होता है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि मुस्लिम आधिपत्य में आनेवाले भाग में जो देशभाषा बोली जाती थी, उसको ही मुस्लिम लेखकों ने 'हिन्दवी' नाम दिया है। उन्होंने कहीं अपभ्रंश को व्यवहार में नहीं पाया। पंजाब से दिल्ली तक के हिन्दी क्षेत्र की जिस भाषा को मुसलमानों ने महत्त्वपूर्ण देखा और जिसके द्वारा उन्हें ऐसा बोध हुआ कि भारत की हिन्दू जनता से वे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं, वह भाषा लाहौर से पूरब की इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) तक की भाषा थी। इसी में तुर्की-अरबी और फारसी सभी प्रकार के शब्द मुस्लिम-प्रभाव से मिश्रित हुए और यही भाषा बाद में भारत में बसे और जनमे हुये मुसलमानों और नव-मुस्लिमों की भाषा बन

जम स्वरूप और लालदास के बीजक से यह प्रमाणित होता है कि हिन्दवी का सामान्यतः व्यवहार गुजरात और मध्यप्रदेश में, और सौराष्ट्र के नगरों में उस समय होने लगा था। हिन्दवी का यह रूप आरम्भ में मुसलमानों ने ही अपनाया, उसमें पद्य रचा और बाद में संत मत में भी इस भाषा का व्यवहार होने लगा। विशेष कर उन सन्तों ने अपने सम्प्रदाय में हिन्दवी में रचना की जो राम-रहीमी एकता या हिन्दू धर्म और इस्लाम का समन्वय चाहते थे। ऐसे सन्तों में गुजरात के प्रणामी सम्प्रदाय के प्राणनाथ विशेषतः उल्लेख्य हैं। कबीर में भी हिन्दवी की कुछ रचनायें मिलती हैं। मुसलमानी शब्दों (अरबी-फारसी-तुर्की आदि) के मिश्रण से जो हिन्दवी रूप विकसित हो रहा था, उसमें दक्खिन में इस्लाम का साहित्य रचा जाने और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतिपादक सन्तों के साहित्य आदि के कारण, पुराण-स्मृति आदि समर्थित सनातनी भक्तिमार्ग के भक्त कवियों ने इस मुस्लिम-गन्ध-दूषित 'हिन्दवी' को अपनी भावनाओं का उपयुक्त माध्यम नहीं समझा।

जिस क्षेत्र में मुसलमानों की बहुसंख्या थी वह हिन्दवी, (हिन्दुई या हिन्दी जो भी नाम दें) बोलती थी। अमीर खुसरो (१२३५-१३२५ ई०) और मुल्लादाऊद आदि ने अपनी भाषा में, अर्थात् अपनी देशभाषा (कुरुक्षेत्र जनपद से दिल्ली तक की भाषा) में कवितायें लिखीं। पूरब के मुसलमानों में अवधी का विशेष प्रचार था, यह अवध के मुस्लिम सूफियों के साहित्य से ज्ञात होता है। आज भी पूरब के मुसलमान अपनी घरेलू भाषा में उर्दू के साथ अवधी के दिहिस, कहिस आदि का प्रयोग करते हैं। पटने के मुसलमानों में ये रूप अब भी बोलचाल में चलते हैं। मुसलमान कवियों को हिन्दू कवि-सम्प्रदाय में स्वीकृत अपभ्रंश, पिंगल या डिंगल से कोई प्रयोजन न था। वे उन भाषाओं को न जानते थे, न बोलते थे। केवल एक मुसलमान कवि अद्दहमान अपभ्रंश कवि के रूप में प्रसिद्ध है।

अवधी में पहला कवि मुल्लादाऊद हैं जिसने चंदायन १३७० ई० में लिखा था। जान पड़ता है कि अवध की ओर अभी हिन्दवी का काफी प्रचार नहीं हुआ था। जनसम्पर्क के लिये इससे सूफियों को अवधी में लिखना पड़ा। दाऊद के लगभग दो सौ वर्ष बाद मानस रचा गया था। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार अवधी में प्रथम हिन्दू लेखक ईश्वरदास हैं जिन्होंने शाह सिकन्दर के समय लिखा था। हिन्दवी का पहला कवि अमीर खुसरो और अवधी का पहला कवि मुल्लादाऊद है। खुसरो के पूर्व की गोरख बानी है।

खुसरो की कविताओं में व्रजभाषा रूप भी मिलते हैं। गोरख की बानी में खड़ी बोली के कुछ रूप मिलते हैं, पर वे कवि रूप में प्रसिद्ध नहीं हुये, उन्हें महा-योगी का यश ही प्राप्त हुआ।

हिन्दी के तीन रूप हिन्दवी (हिन्दी), अवधी और व्रजभाषा ही मुख्य हैं। हिन्दी के अन्य रूप मध्यदेशीय भाषा के रूप नहीं हैं। राजस्थानी और मैथिली आदि की रचनायें विशुद्ध हिन्दी क्षेत्र के बाहर की भाषाओं में हैं। विशुद्ध हिन्दी क्षेत्र से हमारा अभिप्राय ब्रह्मावर्त्त और पूरब में भोजपुरी क्षेत्र तक से है। ग्रियर्सन ने इस क्षेत्र की भाषाओं को पश्चिमी हिन्दी और पूरबी हिन्दी का क्षेत्र माना है। इस क्षेत्र में हरियाना का भाग और भोजपुरी-क्षेत्र जोड़ दिया जाय तो विशुद्ध हिन्दी क्षेत्र बन सकता है। ब्रह्मावर्त्त और अन्तर्वेद की भाषा पश्चिमी हिन्दी है और उससे इतर भाग की पूरबी हिन्दी। बोलचाल में हिन्दवी ब्रह्मावर्त्त के पश्चिमोत्तर भाग में चलती रही। इस प्रसंग में हिन्दी नाम की व्युत्पत्ति अथवा निर्वचन पर विचार करना आवश्यक है।

प्राय: यह माना जाता है कि सिन्ध से हिन्द शब्द बना (स का ह उच्चारण होने के कारण) और फिर हिन्द से हिन्दवी और हिन्दी। (वी और ई प्रत्ययों के योग से) यहाँ मन मे यह शंका उठती है कि सिंध (सिन्धु) से हिंद बन सकता है और सप्तसिन्धवः प्राचीन से ईरानी में हप्त हिन्दवः प्रयोग मिलता है। पर यह हिन्दवः तो ६ ठीं शताब्दी ई० पू० ही बन चुका था। फिर इसका प्रयोग भारत में ११ वीं शताब्दी तक क्यों नहीं मिलता? फिर पश्चिम से आगत आक्रामक मुस्लिमों ने सिन्ध प्रदेश को सिन्ध ही कहा; उसे हिन्द कभी नहीं कहा गया। हिन्द शब्द का प्रयोग सिन्ध प्रदेश के लिए नहीं, उस भाग के लिये बराबर किया गया, जो रावी के पूरब है और जिसे बाद में फारस-वालों ने हिन्दोस्तान या हिन्दुस्तान कहा। सिन्ध नदी के पूर्व स्थित पंजाब (पंचनद प्रदेश) के उस भाग से प्रारम्भ होनेवाले भू-भाग के लिये ही हिन्द या हिन्दुस्तान शब्द प्रयुक्त हुआ। 'स्तान' (स० स्थान) फारसी देशवाचक प्रत्यय है। 'ई' प्रत्यय हिन्दी का अपना प्रत्यय है। पर यही प्रत्यय ई अरबी और ईरानी, तुर्की आदि में भी मिलता है। अरब+ई=अरबी। ईरान+ई =ईरानी, मिस्र+ई=मिस्री। हिन्द भौगोलिक शब्द है, हिन्दुस्तान (हिन्दोस्तान)* का अर्थ यदि हिन्दुओं का स्थान लिया जाय तो एक साम्प्र-

* शुद्ध शब्द हिन्दुस्तान है या हिन्दोस्तान यह प्रश्न यहाँ उतना महत्व-पूर्ण नहीं। उर्दू में हिन्दोस्तान शब्द।

दायिक नाम है। यदि हिन्दू शब्द का अर्थ 'हिन्द का वासी' किया जाय, तो उसी अर्थ में उर्दू में अब तक 'हिन्दी'—हिन्द का वासी चलता है। पर इतिहास से यह ज्ञात होता है कि इस्लाम के आगमन के पूर्व हिन्दू शब्द का अर्थ हिन्द का वासी भले किया जाता रहा हो, पर मुसलमानों ने बाद में इस शब्द का प्रयोग उनके लिये ही किया जो इस देश में इसी देश के धर्म को मानते हैं। भारत के मुसलमानों को मुसलमानों ने 'हिन्दी' कहा, 'हिन्दू' कभी नहीं कहा। हिन्दवी और हिन्दुई शब्दों के अर्थ मे भी कुछ इसी प्रकार का अन्तर सूचित होता है। हिन्द+वी भौगोलिक नाम, हिन्दु+ई साम्प्रदायिक। हिन्दवी का एक नाम 'हिन्दकी' भी मिलता है। 'हिन्दकी'—हिन्द+की। 'की' हिन्दी का एक प्रत्यय भी है। मेरा ख्याल है कि हिन्दवी, हिन्दकी, हिन्दी नामों के पड़ने का यह कारण नहीं है कि हिन्द सिन्ध का उच्चारण-भेद से रूपान्तर है और यह सिन्धु नद या सिन्धु देश से सम्बन्धित है। जिस समय हिन्दवी या हिन्दी शब्द का प्रयोग मिलता है, उसी समय सिन्ध की भाषा सिन्धी ही कहलाती थी। प्राचीन 'कुरु राज्य' की या हरियाना की सीमा के निकट ही एक शहर है, जो सरहिन्द कहलाता है। सरहिन्द के पूर्व की ओर जो भाग है यही हिन्द है, वहीं से हिन्दी का क्षेत्र आरम्भ होता है। सरहिन्द का क्या अर्थ है, यह विचारणीय है। सरहिन्द—जहां से हिन्द का आरम्भ हो, जो हिन्द का सिरा हो। सर का अर्थ सिर लें तो यह शिर स० से निकला है। शिर शरीर का उत्तमांग है। शरीर मे यह अंग सब अंगों के ऊपर, सबसे श्रेष्ठ है।

ब्रह्मावर्त देश ही भारतवर्ष का उत्तमांग है। ब्रह्मावर्त्त में ब्रह्म शब्द से ब्राह्मण जाति का बोध होता है। ब्राह्मण वर्ण ही उत्तम वर्ण है। भारतवर्ष का यही उत्तमांग है अतः उसे सरहिन्द कहा गया है। मेरे मत में हिन्दी नाम इस सरहिन्द के हिन्द शब्द के कारण है। यही भूमि वैदिक सारस्वत देश है। यही सारस्वत ब्राह्मणों का उद्गम स्थल है। इसी सारस्वत देश की सरस्वती (भाषा) प्राचीन काल में संस्कृत की गयी एवं सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा और सांस्कृतिक भाषा बनी। अतः यही की भाषा हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई आदि नामों को धारण कर मुसलमानो द्वारा हिन्द की सर्वमान्य प्रतिनिधि भाषा के रूप में ग्रहण की गई। इसी भाग मे मुसलमान हिन्दवी से परिचित हुये।

खुसरो के अनुसार मासूद-बिन-साद सलमाँ ने हिन्दी में एक दीवान बनाया था। यह उस समय का पहला मुसलमान लेखक है जिसने हिन्दी में सब लिखा था, जब दिल्ली में राजधानी नहीं कायम हुई थी। अभी मुस्लिम राजसत्ता का

केन्द्र लाहौर में ही था। गोरी वंश का जब दिल्ली पर आधिपत्य हुआ और वह राजधानी बनी उसके बाद अमीर खुसरो ने जिस हिन्दी मे लिखा वह जबाने देहली या देहलवी है। डा० मासूद (अलीगढ वि० वि०) का मत है कि हरियानी में ही पहले फारसी शब्दों के मिश्रण के पूर्व हिन्दवी ही नहीं 'हिन्दुई' (शुद्ध हिन्दू भाषा) भी थी। वह कुरुभाषा थी, कौरवी थी। यही दिल्ली के महत्त्व बढ़ने के बाद, थोड़े परिष्कार के बाद देहलवी कहलायी। लल्लू जी ने जब अपनी भाषा को 'दिल्ली-आगरे की खड़ी बोली' कहा तो उनका अभिप्राय उसी बोली से था, जो दिल्ली और आगरे में, फारसी शब्दों से अमिश्र प्रकृत रूप में चलती थी। अतः जिन मुस्लिम विद्वानों का यह मत है कि उर्दू का जन्म पंजाब में हुआ, उनका मत भी इस दृष्टि से ठीक है कि हरियाना अभी १९६६ तक पंजाब में ही था। वास्तव में यह मिश्रण पंजाब के अंग हरियाना की बोली में हुआ था। अब यही कहना ठीक है कि हरियानी ही हिन्दी की जन्मभूमि है। इसका जन्मकाल गजनवी और गोरी वंश के राज्यकाल के बीच में मानना उचित है। बाद में कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्य अजमेर, मेरठ, बदायूँ, ग्वालियर, अवध और मालवा तक हो गया। इस प्रसंग मे यह भी उल्लेख्य है कि हरियानी और दक्खिनी हिन्दी के व्याकरण में अद्भुत साम्य है।

जब दिल्ली राजधानी बन गयी, तब मुसलमानों का सभी देशों से वहाँ आगमन होने लगा और वहाँ सभी भागों से आकर हिन्दू भी रहने लगे, कोई ब्रजभाषा बोलता होगा, कोई अवधी, कोई हरियानी, कोई राजस्थानी, अतः उनके पारस्परिक सम्पर्क का कुछ प्रभाव दिल्ली की जबान पर पड़ना स्वाभाविक था, पर उसका सामान्य व्याकरणिक आधार हरियाना (पानीपत-कुरुक्षेत्र आदि) की बोली ही थी। बाद में हिन्द के इस भूभाग के लिये 'हिन्दुस्तान' शब्द अधिक प्रचलित हुआ जहाँ हिन्दी अपने विभिन्न रूपों में बोली जाती थी। इस 'हिन्दुस्तान' की प्रमुख भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' यूरोपियनों के बीच विशेष प्रचलित हुआ। गिलक्रिस्ट को 'हिन्दुस्तानी' नाम अधिक पसन्द आया और उन्होंने इसी नाम के अन्तर्गत हिन्दवी, रेखता, उर्दू, हिन्दी खड़ी बोली सबको स्थान दिया।

दिल्ली का एक नाम इन्द्रप्रस्थ प्रसिद्ध है। पुराकाल में आर्यों ने अपने राजा को इन्द्र नाम दिया था। मनु के पूर्व आर्यों के पूर्वज अपने को 'देव' कहते थे। इन्द्रदेव राजा था। इन्द्र की स्मृति मे ही देश की प्राचीन राजधानी का नाम इन्द्रप्रस्थ भी पड़ा। महाभारत-काल में इन्द्रप्रस्थ राज नगर था।

इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर दोनों में बहुत कम दूरी थी। क्या इन्द्र शब्द में हिन्दी की ध्वनि निहित है ? चीन मे इस देश को 'इन-तु' देश कहा गया है। इन्द्र शब्द से 'हिन्द' का सम्बन्ध न जोड़ा जा सके, पर दोनों का ध्वनि-साम्य तो स्वीकार किया ही जा सकता है। कदाचित् इन्द्र से इन्द और पुन हकार की ध्वनि के आगम से हिन्द भी चल पड़ा हो। यह अनुमान मात्र है। इस अनुमिति को अभी पुष्ट करने के लिये विशेष प्रमाण की आवश्यकता है। इसे एक अनुमित संकेत के रूप में ही मैं प्रस्तावित कर रहा हूँ। अस्तु। इन्द्रप्रस्थ की भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। वह आर्यावर्त्त की देहली है। दिल्ली का 'देहली' नामान्तर भी प्रसिद्ध है जो वर्ण विपर्यय से अंग्रेजी में 'देलही बन गया है।

जब खुसरो की हिन्दवी या देहलवी मे फारसी शब्दों का मिश्रण अधिक मात्रा में हुआ तब उसका एक नाम 'रेख़्ता' भी चल पड़ा। खुसरो की ऐसी द्विपदी रचनायें मिलती हैं, जिनमें प्रथम चरण फारसी का और द्वितीय चरण हिन्दवी का है।

शबाने हिज्रां दराज चूं जुल्फो रुजे वसलत चूं उम्र कोताः
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ।

इसके द्वितीय चरण को देखें। हिन्दी की इतनी पुरानी कविता किसी हिन्दू कवि की नहीं मिलती। अतः जब तक खुसरो के पहले की कविता, *किसी स्रोत से नहीं मिलती, तब तक उसे ही हिन्दी (खड़ी बोली) का प्रथम* कवि होने का गौरव प्राप्त है। 'सखी पिया को जो मैं न देखूं······' फारसी-मिश्रित हिन्दवी, खालिस हिन्दवी है। प्रसिद्ध है कि खुसरो ने अपने गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर यह करुण दोहा पढ़ा था—

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डाले केश।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देश॥

'अब हिन्द मे हर सूबे की अपनी खास जबान है। जैसे—सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, कनारी, धुर समुद्री तिलंदी. गूजरी, मारवाड़ी, गौड़ी, बंगाली और अवधी। पर दिल्ली और उसके चारो ओर चलती जबान हिन्दवी है, जो पुराने जमाने से व्यवहार मे है और सब बोलियों की जगह बोली जाती है।' इस विवरण में अपभ्रंशों का उल्लेख नहीं है। यदि यह विवरण ठीक है तो अमीर खुसरो के समय मे अपभ्रंश किसी भाग में देशभाषा नहीं थी—वह मात्र कवि सम्प्रदाय में परम्परा मान्य भाषा थी। खुसरो हरियानी और ब्रजभाषा

नाम नहीं लेते। इसका यह भी कारण हो सकता है कि हरियानी नाम उस समय प्रचलित नहीं था और ब्रजभाषा नाम भी प्रचलित न था। हम यह दिखला चुके हैं कि सूर ने भी अपनी भाषा को 'भाषा' ही कहा, ब्रजभाषा नहीं। खुसरो ने तुगलकनामा (फारसी मसनवी) में हिन्दवी के उदाहरण मे 'हाय, हाय तीर मारा' प्रयोग दिया है। 'तीर मारा' प्रयोग उनकी हिन्दवी के रूप को स्पष्ट उद्घाटित करता है कि उनकी हिन्दवी खड़ी बोली ही है।

दिल्ली के मुस्लिम राजपीठ बन जाने पर बड़े-बड़े सूफी फकीर भी वहाँ जम गये। उन्हें यह बोध हुआ कि फारसी से सामान्य प्रजा के दिल पर असर नहीं डाला जा सकता और इसके लिये बिना हिन्दवी के अपनी बात को प्रजा के दिल में उतारना सम्भव नहीं। जब अलाउद्दीन ने दक्खिन और गुजरात भी जीत लिया, तब मुसलमान विजेताओं के साथ-साथ हिन्दवी भी वहाँ जा पहुँची, इस प्रकार हिन्दवी का एक रूप वहाँ रोपा गया, जो दक्खिनी के नाम से वहाँ फला-फूला। वहाँ हिंदवी पर फारसी-अरबी का आरम्भ में अधिक मिश्रण नहीं हुआ और हिंदी के छदों को भी अपनाया गया। शाह बू अली कलन्दर का यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है।

सजन सकारे जायेंगे और नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी कीजियो कि भोर कबहुँ ना होय॥

इसे हिन्दी कौन नहीं कहेगा ? हिन्दी को अपने क्षेत्र से दूर दक्खिन, गुजरात और महाराष्ट्र तक पहुँचाने का सर्वाधिक श्रेय मुस्लिम शासक-वर्ग को है और उसे मुसलमानों में लोकप्रिय बनाने का श्रेय मुस्लिम सूफियों और फकीरों को है। केवल अवध के सूफियों ने अपनी देशभाषा अवधी में रचनायें कीं। उन्होंने हिन्दवी को नहीं अपनाया। इसका कोई विशेष कारण होना चाहिये। हो सकता है कि अवध के मुसलमानों मे हिन्दवी का कम प्रयोग होता हो अथवा वहाँ की हिन्दू जनता ने हिन्दवी को कम मात्रा में ग्रहण किया हो। यह भी सम्भव है कि अवधी में आख्यानक काव्यों की परम्परा रही हो। पर यह बात तब भी स्पष्ट नहीं होती कि अवध के सूफी प्रेम कहानी कहनेवालो ने ही क्यों अपनी देशभाषा को इस प्रकार निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार किया। दक्खिनी के सूफी कवियों ने अपना माध्यम हिन्दवी को बनाया और उसमे आख्यानक काव्य भी रचे।

हिन्दू सन्तों ने भी रासो काव्यों की भाषा को, चारण-भाटों की पद्धति का और कड़वक छन्दों वाली पिंगल भाषा को वाहन नहीं बनाया। इसका

कारण क्या था ? निर्गुण धारा के सन्तों ने हिन्दवी के सामान्य व्यापक रूप में रचनायें की हैं। वे अपनी देशभाषा के साथ ही इस हिन्दवी में भी रचनायें करते थे। जिन सन्तों ने राम-रहीम की एकता पर जोर दिया और जो अपनी 'बानी' द्वारा हिन्दू-मुसलमान दोनों को सत्यमार्ग दिखलाना चाहते थे, उन्हें हिन्दवी उपयुक्त माध्यम जान पड़ी। प्रणामी सम्प्रदाय के कुलजम स्वरूप और बीतक में हिन्दवी का तत्कालीन व्यावहारिक रूप मिलता है। ये काव्य हिन्दी-क्षेत्र के बाहर रचे गये थे।

मिथिला की भाषा-साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। वहाँ संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों ने भी मैथिली में रचनायें की। १४ वीं शताब्दी के अन्त तक यह भाग मुस्लिम प्रभाव से मुक्त था। हिन्दू कवियों में ज्योतिरीश्वर ठाकुर का वर्ण रत्नाकर और विद्यापति की पदावली इस बात का प्रमाण है कि उस समय तत्सम शब्दों का प्रयोग खूब होता था। अपभ्रंश में तद्भव तत्व प्रमुख है। संस्कृत शब्दावली का प्रचुर प्रयोग इस बात का सूचक है कि अपभ्रष्ट शब्दों को छोड़कर तत्सम शब्दों की ओर मिथिला के कवि बढ़ रहे थे। भागवत की छाया लेकर रचे जानेवाले सूरसागर तथा तुलसी के विनय पत्रिका और मानस आदि ग्रन्थों मे यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। हिन्दी में पद्मावत तद्भव प्रधान है। 'मानस' में तद्भव रूपों के साथ तत्सम रूपों की ओर भी झुकाव है। भाषा लेखक की शिक्षा-दीक्षा और संस्कार पर भी बहुत निर्भर करती है। सूरदास और तुलसीदास ब्राह्मण कवि थे और वे पौराणिक संस्कार युक्त थे। अतः उन कवियों की भाषा अपभ्रंश की परम्परा से मुक्त है। इन कवियों के बाद अपभ्रंश परम्परा का प्रभाव केवल राजस्थानी चारण-भाटों की वीरगाथाओं में जीवित रहा।

हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में हम लेखकों को दो वर्ग में रख सकते हैं—एक द्विजवर्ग (या ब्राह्मणवर्ग) और दूसरा द्विजेतर वर्ग। ब्राह्मण वर्ग के लेखक संस्कृत के ज्ञाता थे, संस्कृत के धार्मिक और लौकिक साहित्य के पंडित थे और उसकी समृद्ध परम्परा से बँधे हुये थे। इन कवियों ने अपनी 'भाषा' के माध्यम से, संस्कृत की सरणि पर चल कर, रचनायें प्रस्तुत कीं। दूसरा वर्ग द्विजेतर लेखकों और मुसलमानों का है, जिनकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृत में नहीं हुई थी और जो केवल अपनी देशभाषा में ही अपने भावों अथवा विचारों को व्यक्त करने में समर्थ थे। इस द्विजेतर वर्ग में हिन्दी के सैकड़ों संत-कवि आते हैं और मुसलमान कवियों मे खुसरो (दिल्ली), कबीर (- , जायसी (अवध) आदि आते हैं। जब ब्रजभाषा सर्व स्वीकृत ... गयी, और अष्टछाप और अन्य ब्रज भाषा—कवियों द्वारा रचना ...

रूप सँवर उठा उसके बाद तो मुसलमानों ने मानक ब्रजभाषा में ही लिखा। अवधी के सूफी कवियों में तद्भव और ग्राम्य रूपों का विशेष मोह बना रहा। मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि सुशिक्षित द्विज वर्गीय लेखकों की भाषा अधिक तत्समोन्मुखी है और द्विजेतर वर्गीय लेखकों की विशेष तद्भवमुखी।

विशुद्ध हिन्दी-क्षेत्र की दृष्टि से हिन्दी के तीन रूप ही महत्वपूर्ण हैं—हिन्दवी (हिन्दी), ब्रजभाषा और अवधी। भोजपुरी भाषा-क्षेत्र को पूरबी हिन्दी के क्षेत्र में रखकर विचार किया जा सकता है, क्योंकि सदा से इसका मुख अपने पश्चिम की ओर खुला रहा है। राजस्थानी और मैथिली हिन्दी-क्षेत्र की पश्चिमी और पूर्वीय सीमान्त की भाषायें हैं। हिन्दी मध्यदेश की भाषा है, हिन्दवी (खड़ी बोली) इस मध्य देश के उत्तमांग (सरहिन्द, कुरु राज्य, सारस्वत देश) की भाषा है। ब्रजभाषा और अवधी मध्य देश के दो पृथक् भागों की भाषायें हैं। ब्रजभाषा का सम्बन्ध मुख्यतः अन्तर्वेद से है और अवधी का अवध से। भोजपुरी का निकट सम्बन्ध काशी राज्य से बराबर रहा है। अतः उसे भी मेरे मत से पूर्वी हिन्दी का ही एक भेद है। अतः विशुद्ध हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत कुरु राज्य, कन्नौज राज्य, कोसल और काशी राज्य प्रमुख राज्य थे और इन्हीं प्रदेशों की भाषा हिन्दी है।

आधुनिक हिन्दी कुरु राज्य की भाषा है। यही अब भारत की भारती है और भारतीय गणराज्य की राजभाषा और हरियाना, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्यप्रदेश और राजस्थान राज्यों की भी राजभाषा है। यही अन्तर्भारती व्यवहार की भाषा है। अतः यह आवश्यक है कि इस भाषा के क्रियापदों की धातुओं का विद्वानों द्वारा अनुशीलन और विवेचन हो।

• •

हिन्दी धातु कोश

अँकुरा-ना—क्रि० अ० (अंकुर से क्रिया) अंकुर निकलना। अँकुरी (अँकुर+ई)।

अँखुआ-ना—क्रि० अ० (अँखुआ>अंकुर) अंक से अँख+उ आ।

अँगड़ा-ना—क्रि०अ०(अँग>अंग,ड़ प्रत्यय। अँगड़ाई (अँग+ड़+आई)।

अँगेज-ना—क्रि० स० (अँग+एज) अंगीकार करना।

अँगोछ-ना—क्रि० स० (अँग+ओछ>उंछन)

अँगोछा—अँग+ओछ+आ (खड़ी बोली का पुं० व्यंजक प्रत्यय) अँगोछा से क्रिया, नाम धातु। अँगोछा वंक० रूप।

अँचव-ना—क्रि० स० (अँचवना>आचमन) प्रे० अँचवाना।

अँजा-ना—क्रि० स० ('अंजन' से क्रिया) अंजन लगवाना। आँजना। अँजवाना।

अँट-ना—क्रि० अ० (अँट श० स० 'अन्तर्या' से) अँट अन्तर् से भी निकल सकता है। र् का प्रायः लोप होता है।

अँटिया-ना—क्रि० स० (हि० 'अंटी' से) उँगलियों के बीच छिपाना।

अँडुआ-ना—क्रि० स० अँड>अंड। अँड+उआ। बधिया करना।

अँसुआ-ना—क्रि० अ० ('आँसू' से) आँसू भर जाना।

अकड़-ना—क्रि० अ० ('कड़' में अ के आगमन से) अकड़ाव (अकड़+आव), अकड़ू (अकड़+ऊ) अकड़ैत (अकड़+ऐत)

अकबका-ना—क्रि० अ० (अक+बक>वाक्)अकबक में अक बक के तुक पर निरर्थक शब्दांश रूप में आया जान पड़ता है। अंड-बंड में भी बंड के तुक पर जान पड़ता है। औंध बौंध आदि शब्द भी देखें। श० सा० में अक को अवाक् से निकला माना गया है।

अकुला-ना—क्रि० अ० ('आकुल' से नामधातु) घबड़ाना।

अखर-ना—क्रि० अ० (खर खल का वंक०) ल का र में परिवर्तन खर (खल) का यहाँ बुरा अर्थ है। बुरा लगना।

अगरा-ना—क्रि० अ० (यह अँगड़ाना से भी सम्बद्ध हो सकता है; अगराने में अंगों को प्यार से मोड़ने की क्रिया भी होती है। श० सा० में अंगराग से यह व्युत्पन्न माना गया है)। प्यार या दुलार में अंगादि को मोड़ते हुये ढीठ व्यवहार करना।

अगिया-ना—क्रि० अ० 'आग' से नाम धातु।
आग>प्रा० अग्गि>अग्नि।

अगोर-ना—क्रि० स० (श० सा० आगूरण। गोर का अर्थ छिपाना भी होता है। गोर में अ का आगम भी हो सकता है।)
अगोरिया (अगोर्+इया)।

अघा-ना—क्रि० अ० (अग्रह 'श० स०' से, जब मुख से अधिक ग्रहण नहीं किया जा सके)।

अटक-ना—क्रि० अ० ('टक', टिक 'ना' का रूपान्तर हो सकता है। 'टक' में अ का आगम। टिकना का रुकना अर्थ है। अथवा अट् चलना) क प्रत्यय।
क्रि० स० अटकाना। अटका (आटिका)—वह धन या पदार्थ जो देवता पर चढ़ाया जाता है।

अटपटा-ना—क्रि० अ० (अट>√अट् पट>√पत्)
लड़खड़ाना, गड़बड़ाना।
अटपट, अटपटी।

अड़-ना—क्रि० अ० (अड़ शब्द 'अट' से, ट का ड़।
अड़ का अट (अटक) से किञ्चित् भिन्न अर्थ है।
क्रि० स० अड़ाना। अड़ान। क्रि० स० आड़ना। अड़ से आड़ भी।

अड़क-न—क्रि० अ० (अड़क=अड़—क) अड़क-अटक में कुछ अर्थ साम्य भी है।

अढ़ा-ना—क्रि० स०। (प्रा० आढव) काम में लगाना। काम अढाना।

अतुरा-ना—क्रि० अ० (आतुर से नाम धातु)। अतुराई।

अधिका-ना—क्रि० अ० (अधिक से नाम धातु।) अधिक होना।

अधिया-ना—क्रि० स० (आधा से नाम धातु) अधिया। आधियार। अधियारी।

अनठिया-ना—क्रि० अ० ('अनठ'-अनिष्ट ?) महठियाना।

अनखा-ना—क्रि० अ० अन्य रूप–अनखाना–हिं० 'अनख' से। अप्रसन्न होना।

अपना-ना—क्रि० स० ('अपना' से नाम धातु, अपना आत्मन से।)

अफर-ना—क्रि० अ० (<स्फारणं)। अफरा एक रोग।

अबुहा-ना—क्रि० अ० (अबुहान>आह्वान) भूत-प्रेत से आविष्ट होकर हाथ-पैर पटकना।

वैक० अभुआना। बह के स्थान पर भ (ब—ह)

अभिलाख-ना—क्रि० अ० (<अभिलषणं) 'अभिलाषा' से क्रिया। ष का ख उच्चारण।

अमा-ना—क्रि० अ० (आ—मान–सं० सा० पूरा-पूरा भरना लगभग इसी अर्थ में 'समाना' भी (स—मान)

अमेज-ना—क्रि० स० (<फा० आमेजन) मिलावट करना। मींजना भी इससे निकला हो सकता है।

अरप-ना—क्रि० स० (अर्पणं)√अर्प्

अरबरा-ना—क्रि० अ० ('अरबर' से। अरबर वैक० अड़बड़) अड़बड़ से अंडबंड। यह अनुकारी शब्द जान पड़ता है। अड़—रुक-रुक, बड़—बकना अर्थात् अस्फुट बोलना। बड़ का 'बर' भी होता है, 'बर्राना' में यह 'बर' दीख पड़ता है।

अररा-ना—क्रि० अ० 'अरर' शब्द करते हुये गिरना।

(अनुकारी शब्द)।

अरार (कगार)–भोजपुरी में नदी तट के उस भाग को कहते हैं जो लहरों के आघात से काटता बनता है।

अरथियाना—क्रि० स० (अरथ>अर्थ से नाम धातु)।

अलगा-ना—क्रि० स० (अलग 'अ—लग' से क्रिया)।

अलसा-ना—क्रि० अ० ('आलस' से नाम धातु)।

अलाप-ना—क्रि० स० (आलाप से नाम धातु)।

अवाँस-ना—क्रि० स० (व्यु० ?) काम में प्रथम बार लाना–विशेष कर मिट्टी के पात्र का।

असकता-ना—क्रि० अ० (असक्त>अशक्त) आलस अनुभव करना।

असीस-ना—क्रि० स० (असीस>आशिष् से नाम धातु।

आ

आँक-ना—क्रि० स० (आँकना>अंकनं) अँकाई।

आ-ना—क्रि० अ० (सं० याति=जाता है, आयाति=आता है। या का हिन्दी में जा हुआ और आयाति से केवल आ लिया गया)। अवाई=आ—आई (आने का भाव)।

आजमा-ना—क्रि० स० (आजमाइश फा० से) बोलचाल में अजमाना भी। प्रयोग में लाकर देख लेना या जाँच लेना।

आन-ना—क्रि० स० (आनयति-आनय आदि रूपों से 'आन' लिया गया)।

आराध-ना—क्रि० स० (आराधनं)।

इ

इठला-ना—क्रि० अ० (श० सा० के अनुसार ऐंठ—लाना से। पर यह चिन्त्य है।) इठलाना का अर्थ इतराना भी है, अतः इत-राना का ही रूपान्तर हो—त का ठ, र का ल होकर।

इतरा-ना—क्रि० अ० (इतरा-'इत्वर' से)

उ

उचक-ना—क्रि० अ० (उचक-उत्—चक से) उचकने में ऊपर उठने का भाव है।

उड़ेल-ना—क्रि० स० (उ—ढाल, उ हिन्दी उपसर्ग ऊपर के अर्थ में प्रायः आता है और सं० उत् का विकास है। यह 'उद्धारण' से सम्बद्ध हो सकता है—उत्—धार। ढार से ढाल।—ढ से ड, र का ल)

उकठ-ना—क्रि० अ० (उकठ-उ—कठ 'काठ' सूखना वृक्षादि का)। उकठा वि०।

उकता-ना—क्रि० अ० (उकत—उत्कृत से ?) ऊबना, जल्दी मचाना।

उकला-ना—क्रि० अ० इसके अन्य रूप उगलाना। ओकलाना भी बोल-चाल में। उकाई-(ओकाई)=उक—आई उगलाना। उगलना आदि रूप अधिक प्रचलित।

उकस-ना—क्रि० अ० (उकस-उत्—कर्ष) उभरना। क्रि० स० उकसाना। उकसाहट।

उखड़-ना—क्रि० अ०। उखड़>उत्-खद् (√खन्) उखड़-उ—खड़। अथवा उत्कर्षति-प्रा० उक्कंड्डइ से।
उखाड़ना। उखड़वाना।

उग-ना—क्रि० अ० (उग-उत् गम्-व्यञ्जनों का लोप होकर उत् से उ और गम् से ग शेष रहा)।
क्रि० स० उगाना।

उघट-ना—क्रि० अ० (उत् घट् से) उद्‌घाटन से उघटना)।

उघर-ना-क्रि.अ.(उघर-भी उत् घट् से,उघरका वैकल्पिक रूप उघड़ भी चलता है-घट् से घड़। फिर घड़ का र (ड़ का र में परिवर्तन)।
क्रि० अ० उघारना, उघाड़ना।

उगल-ना—क्रि० स० (उ—गल-उद्‌गिलत-प्रा० उग्गिलन प्रे० उगलाना, उगलवना।
उगाल (दान)।

उगाह्-ना—स० (उगाह्-उत्—ग्राह् उद्‌ग्रहणं) लोगों से अलग-अलग धन या अन्न आदि लेना।
उगाही।

उचट-ना—अ० (उचट-उत् चट् 'उच्चाटन मन उठ जाना या विरक्त होना।
उचाटना, उचाट।

उचड़-ना—अ० (उचट से ट का ड़ होकर) किसी सटी चीज को अलग करना या खोदारना।

उचर-ना—अ० (उत्—चर, उच्चारणं। उच्चारण करना या बोलना।
स० उचारना (उच्चारणं)।

उछक-ना—अ० (उ—छक-उत्—छक्, जब [अधिक पीना वाक्य न हो) नशा आने का भाव।

उछल-ना—अ० (उछल-उच्छल, उच्छलन) वेग से ऊपर उठना ।
स० उछालना । उछलवाना । उछाल ।

उजड़-ना—अ० (उ—जड़—जड़ से उखड़ना) क्रि० स० उजाड़ना ।
प्रे० उजड़वाना । उजाड़ संज्ञा । उजड़ा वि० (सं० उज्जट से सम्बद्ध हो सकता है) ।

उजल-ना—स० (उज्वलनं—उत—ज्वल) 'उजलती सी जलती मुसकान' मैथिलीशरण गुप्त
ि० स० उजालना । उजलवाना । उजाला ।

उझल-ना—स० (उत्क्ष—र् उत्क्षरणं) बंग० उझेलना ।
किसी चीज को ऊपर से नीचे गिराना ।

उठँग-ना—अ० (उठंग—उत्थ—अंग) किसी ऊँची चीज का सहारा लेकर टेकना । क्रि० स० उठँगाना ।
बंक० ओठगना ओठँगाना ।

उठ-ना—अ० (उठ>'उत्थ', उत्थान-उठान) उठाना । उठाना ।
उठाई, उठाव, उठौवा, उठावा, उठौनी ।

उड़-ना—अ० (उड़—उत-डयन (√डी) । उत का उ और ड यन का ड़ उड़) उड़ाना । उड़वाना । उड़ान । उड़न समास में, उड़न खटोला । उड़नछू, उड़ाकू ।

उड़ास-ना—अ० (उ—डास—उद्दासन' से । बिछौना समेटना ।
'डास' से क्रिया डसाना । ('आगे फिर न डसैहो'-तुलसी)

उढक-ना—अ० (उढक, उठक, दक से ढक, ढक 'स्थक' से ?) ।
ठोकर खाना, टेक लगाना । उढकाना ।

उढार-ना—स० (उढार—ऊढा—आर)
किसी विवाहिता का पर पुरुष द्वारा निकाला जाना ।

उतर-ना—अ० (उतर—उत—तर, उत्तरणं; √तृ अथवा 'तर' में हिन्दी उपसर्ग उ का योग) ।

उघड-ना—अ० (उद्धरणं—सा० स०)
उद्धरण और उघड़ने के अर्थ मे अन्तर है । मेरे मत में यह उ—घड़ 'हिन्दी' से बना है उघड़—घड़ से अलग होना ।
घड़—मूल भाग (प्राय: शरीर का)

उधेड़-ना—स० यह उघड़ का रूपान्तर जान पड़ता हैं। (उघड़ना से उधेड़ना, घुसड़ना से घुसेड़ना, उभलना से उभेलना आदि के गठन को देखिये।) सं० उद्धारणं से भी यह सम्बद्ध हो सकता है।

सीवन (सीयन) या पर्त को उखाड़ कर अलग करना।

उनच-ना—स० 'श० सा०' ने इसका सम्बन्ध 'ऐंचना' से माना है। इसका अर्थ है चारपाई की बुनावट को खींच कर कड़ा करना भोजपुरी क्षेत्र में इसे 'ओरचना' कहते हैं।

उपज-ना—अ० उपज—('उत्पद्य'—उत्पद्यते) उत् का उ, द्य का ज। (उत्—√पद्)।

स० उपजाना। उपजाऊ।

उपट-ना—अ० (उपट—उत्पट) उत्पटनं।

दाग या निशान पड़ना (उखड़ना)।

उपड़-ना—अ० (उपड़ 'उपट' का रूपान्तर—ट का ड़ होकर)।

स० उपाड़ना (<उत् पाट्य) अन्य रूप—उपाटना।

उपरा-ना—अ० (ऊपर से। ऊपर 'उपरि' से)।

स० भी ऊपर करने के अर्थ में।

उफन-ना—अ० (उफन—उत्—फेन)।

उफान। उफनाना—नाम धातु उफान से।

उबट-ना—स० (उबट—उद्वर्तः, उबटना—उद्वर्तनं)।

उबर-ना—अ० (उबर—उद्वरणं उत्√वृ—वर)।

उबारना—(उद्वारणं)

उबलना—अ० (उबल—उ—बल, उत्बलनं,

उबालना। उबाल। उबला वि०।

उभर-ना, उभड़ना—अ० (उभड़—उद्भरणं) उद्भारयति—प्रा० उब्भारइ

उभारना, उभाड़ना। उभाड़, उभार।

उमग-ना—अ० (उमग—उमंग से।) नाम धातु।

उमड़-ना—अ० (उमड़—उत्-मंडनं श० स०)।

उमस-ना—अ० उमस—ऊषम (ऊष्मा) के वर्णविपर्यय से।

उमेठ-ना—स० (श० सा० के अनुसार उद्वेष्टन से)

उद्वेष्ठन के अर्थ से उमेठना का अर्थ मेल नहीं खाता। मेरे मत में यह उ—ऐंठ से निकला जान पड़ता है। एक स्वर के बाद निरन्तर दूसरा स्वर आना यह हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है अतः पंचम वर्ण म् का आगम हुआ।
उमेठ—उ—म्—ऐंठ।

उरेख-ना, उरेहना—अ० (उत्—रेखन या उल्लेखन से)
'उरेख' का वंक० रूप उरेह (ख का ह होकर)
प्रायः महाप्राण अक्षर तद्भव रूप में ह हो जाता है।

उलँघ-ना—स० (उल्लंघनं)
उल्लंघन में उत् का लोप कर लंघनं, जिससे लाँघना बनता है।

उलझ-ना—अ० ('उल्लब्ध' से उलझ) उत्—लब्ध=उल्लब्ध।
श० सा० के अनुसार उलझना-अवरुंधन से। अवरुद्ध—का अर्थ रुका हुआ होता है। लब्ध से 'लझ' अधिक सम्भव है। सुलझ 'सुलब्ध' से, उलझ उल्लब्ध (उत्—लब्ध) से।
स० उलझाना। प्रे० उलझवाना। उलझाव। उलझन।

उलट-ना—अ० (उल्लोटन श० सा०, प्रा० उल्लत्थ)।
स० उलटाना। प्रे० उलटवाना। उलटन। उलटाव। उलटी।

उसन-ना, उसिन-ना—स० (उसन-उष्ण)।
अ० उसनाना। प्रे० उसनवाना। उसना (उसिना)।
उसना या उसिना (चावल)।

उसिन-ना—इकार वाला रूप भोजपुरी क्षेत्र (बिहार) में अधिक प्रचलित है।

ऊ

ऊँघ-ना—(औंघना रूपान्तर)-अ० ऊँघ—अवाङ् (नीचे मुँह—श० सा०)।
प्रा० 'उघइ' से।
ऊँघ का वंक० रूप औंघना, औंघाना भी है। औंघना से: औंघाई (नींद)।

ऊँछ-ना—स० (उच्छन—बीनना—श० सा०)
वंक० औंछना।

ऊब-ना—अ० (उत्—विज्-से ऊब, उत् के उ और विज्-धातु के वि का व मात्र ग्रहण)।

ऋ

कोई ऋकारादि धातु नहीं है।

ए

कोई एकारादि धातु नहीं है।

ऐ

ऐंच-ना—स० (व्यु० अज्ञात)
खींचना। इसे विकल्प से खेंचना भी बोलते हैं। क्या खेंच क ख के लोप से 'ऐंच' निकला है? यह अनुमान मात्र है।

ऐंठ-ना—स० आवेष्ट (नं) से (श० सा०)

ओ

ओंइछ-ना—स० (अंचना)-वारना, निछावर करना।
ओंछना भी इस अर्थ मे कहीं-कहीं प्रयुक्त होता है।

ओका-ना—अ० (ओक—वम्—कृ प्रा० वमक्केइ)
'ओ' शब्द कर के कै करना। ओक का अर्थ मतली, कै श० सा०। क्या ओक—ओ+क के योग से बना है? ओ करना। ओकाई—उकाई। उकाई से उकलाई भी (मध्य में ल के आगम से) उकलाना भी।

ओट-ना—स० (आवर्त (नं)—व के प्रभाव से आ का ओ, त का ट)
कपास को साफ करना, बार-बार अपनी ही बात कहना।

ओठंग-ना—अ० (उत्थ—अंग ?) अथवा उत्तंग से ? टेक कर बैठना।

ओड़-ना—अ० (ओट से ओड़ 'ट का ड़')

ओढ़-ना—स० (ओड—ऊढ़ा से अथवा उपवेष्ट, उपवेष्टते प्रा० ओवेड्डइ।)
ओढ़ाना प्रे० ओढ़वाना। ओढ़ना। ओढ़नी।

ओदर-ना—अ० (उद्दरणं)—किसी सटी चीज का उखड़ना।
स० ओदारना—उद्दारणं।

ग्रोरा-ना—ग्र० ('ग्रोर' से) समाप्त होना।

ग्रोसा-ना—स० (ग्रावर्पण स० सा०) ग्रनाज को हवा में दाना-भूसा ग्रलग करने के लिये उड़ाना।

ग्रौ

ग्रौंघ-ना—ग्र० ('ग्रौंधा' से। ग्रौंधा-ग्रवाङ्—धा। ग्रधोमुख से भी सम्बन्धित हो सकता है।) ग्रौंधाना।

ग्रौंस-ना—ग्र० (ग्रौंस-'उमस' से)।

ग्रौंट-ना—स० (ग्रौंट-ग्रावर्त्त से)।

ग्रोटना ग्रौर ग्रौंटना दोनो शब्द ग्रावर्त्त से निकले जान पड़ते हैं। ग्रावर्त्त का भाव है फेंटना या बार-बार घुमाना। एक ही बात ग्रोटना-बार-बार फेंटना। दूध ग्रादि को ग्रांच पर चढ़ा कर गाढ़ा करने के लिये ग्रौंटना पड़ता है। हार्नली ग्रोट या ग्रौट को स० ग्रव कुट्यति प्रा० ग्रो उट्टई-से मानते हैं।

क

कँप-ना—ग्र० (√कम्प् चलने। प्रा० कम्पइ।)

ग्रन्य रूप—काँपना। स० कँपाना। कँप-कँपी। कँप-कँपाहट।

कचकचा-ना, किचकिचाना—ग्र० (ग्रनु० कच कच शब्द करना) 'किच' दांत को दांत से दबाने का शब्द) किचकिच का ग्रर्थ व्यर्थ का विवाद भी होता है। किचकिची। किचकिचाहट।

कचर-ना—स० (कच्चरण ? क—चरण)

ग्रन्य रूप—कुचलना। कु=बुरा, चलना, कु के स्थान पर क भी ग्राता हैं (कपूत कुपूत के ग्रर्थ मे; चर का चल)। कचारना। कचारना—कपड़ा कचारना (कपड़ा दबाकर धोना)

कचोट-ना—ग्र० (कचोट—क—चोट; चं ट√चुग्ट् छेदने) मन मे पीड़ा का ग्रनुभव करना।

कजला-ना—ग्र० (काजल<कज्जल से नाम धातु)

कट-ना—ग्र० (कट √कृत् छेदने।)

स० काटना। प्रे० कटाना, कटवाना।

कटाई। कटाव। कटान। कटीला। कटनी। कटौती। कटवाँ।
कट्टर (कट्—टर)। कट्टा–हट्टा कट्टा समास में उत्तर पद।
कट्टा का सम्बन्ध कट् से है। ट का ड़ होकर कट से कड़ा भी।
कटाकट (कटाकट का शब्द)।
खटाखट (अल्पप्राण का महाप्राण)।

कठिया-ना—प्र० (काठ<प्रा० कट्ठ<काष्ठ) काठ से नाम धातु।

कड़क-ना—प्र० (कड़क–कड़+क. कड़ कट का रूपान्तर। कड़कड़ाना—'कड़' 'कड़' शब्द होना।)

अनेक नाद-व्यञ्जक शब्दों में द्विरुक्ति की प्रवृत्ति दीख पड़ती है—कड़कड़ाना, खड़खड़ाना, गड़गड़ाना, धड़धड़ाना, फड़फड़ाना, तड़तड़ाना, सुड़सुड़ाना, गुड़गुड़ाना, करकराना, चरचराना, परपराना, फरफराना, सरसराना, थरथराना आदि।

कड़खा—('कड़का' से, कड़का के का के स्थान पर खा; कड़क के साथ गाया जाने वाला एक युद्ध गीत)।

कड़ुआ ना—प्र० (कड़<कटु, कड़ुआ <कटुक) नाम धातु।

कढ़-ना—प्र० कढ़<कृष्<प्रा० कड्ढइ<कढ्ढ।
स० काढ़ना (कर्षण) प्र० कढ़ाना, कढ़वाना। कढ़ाव।

कत-ना—प्र० (कत्√कृत्) सूत कातना।
स० कातना<कर्त्तन। प्रे० कताना, कतवाना, कताई। कतवाई।
कत्ती (सोनारों की कतरनी)<कर्त्ती। कत्तिन (कातने वाली)।

कतर-ना, कुतरना—स० (कतरना-कर्त्तन)
(कतर-कर्त्त के वर्णविपर्यय से बना हो सकता है करत से कतर अथवा कत में र के आगमन से)
कतराना। प्रे० कतरवाना कतरन। कतरनी कतरा।

कतराना का एक अर्थ होता है किसी व्यक्ति या को बचा कर निकल जाना। कतरने से किसी व

का किनारे का हिस्सा अलग हो जाता है, अतः कतराने मे किनारे-से निकल जाने का भाव निहित रहता है।

कनकना-ना—अ० (कन<स० किण से। किण=घर्षण का चिन्ह।) चुनचुनाना या चुनचुनाहट होना। कनकनी। कनकनाहट।

कनमना-ना—अ० (ध्व० ?) सोये हुये प्राणी का कुछ हिलना-डोलना)।

कनखियाना—अ० 'कनखी' से नाम धातु।
(कनखी–कन+आंखी–कोण+अक्षि ?)
कनखी–आंख के कोने की ओर पुतली करके ताकना। यौगिक शब्दों मे कान का कन होता है–कानपटी से कनपटी। अतः कनखी का अर्थ कान की ओर देखनेवाली आंख।)

कबूल-ना—स० ('कबूल' अ० स्वीकार करना) कबूल से नाम धातु प्रे० कबुलवाना।
फारसी-अरबी शब्दों से क्रिया बनाने में प्राय: करना, होना सहायक क्रिया के रूप मे आते हैं। कबूलना–कबूल करना।

कम-ना—अ० (कम–का। घट जाना)
घटने या कम होने के अर्थ में कमना का प्रयोग बिहार मे चलता है। शिष्ट प्रयोग कम होना ही है।
कमी। कमती।

कमा-ना—स० (काम>प्रा० काम>कर्म। नामधातु।
कमाई। कमाऊ। कमेरा (काम करनेवाला)–अल्प प्रयोग। कमा कर।

कर-ना—स० (कर्–√कृ करणे)
प्रे० कराना, करवाना। करनी। करवैया–अल्प प्रयोग।

कर-कराना, कड़-कड़ाना—स० ('कर' अनुकारी शब्द) गरम करना जैसे घी करकराना। कर-कराहट, खर-खराहट (अल्पप्राण का महाप्राण)।

कराह्-ना—स० (कर+ग्राह से कराह ?) कराह-शब्द के साथ ग्राह ।

कलप-ना—अ० (कल्पन श० सा०) बिलखना ।
क्रि० स० कलपाना ।

कलिया-ना—अ० (कली<कलिका से नामधातु) ।

कल्हार-ना—स० (कल्हार-कड़ाह का वर्णविपर्यय) कड़ाह्>कटाह, नामधातु । कड़ाही में भूनना या तलना ।

कसक-ना—अ० (कसक-कस—क; कष् घर्षणे । हार्नली संयुक्त धातु मानते हैं-कष्—कृ प्रा० कसकइ ।

कस-ना—स० (कस<कृष् विलेखने) बंधन को डोरी आदि से खींचकर मजबूत करना ।
कसनी । कसाव ।

कसमसा-ना—स० 'कसमस' से नाम धातु । यह√कस्>गति शासनयोः से है ।
कसमकस । कसमसाहट ।
अनेक शब्दों में पूर्व शब्द की आवृत्ति के पहले म का आगम होता है; जैसे-कसमकस, ठमठस ।

कहर-ना—अ० (कँहर-कराह के वर्ण विपर्यय से)

कह-ना—स० (कह<√कथवाक्यप्रबन्धे । प्रा० कहे, कहइ । प्रे० कहाना, कहवाना, कहलाना, कहलवाना ।
कहानी । कहावत । कहाकही ।

काँख-ना—अ० (काँख<कक्ष से इसका सम्बन्ध जान पड़ता है । अतः नामधातु मान सकते हैं ।

काछ-ना>काछना—स० √कृष् प्रा० कंछइ काछ-कच्छ-किनारे की भूमि । (दे० कछार) से शायद सम्बन्ध हो ।
किसी तरल पदार्थ का हथेली या कलछुल आदि से एक किनारे खींचकर उठाना ।

काछ-ना—स० (काछ का अर्थ कटिवस्त्र, लाँग आदि) अभिनय के लिये वेश धारण करना ।

काँड़-ना—स० (खंडन ?)—ग्राम्य शब्द ।
अन्य रूप खँड़-ना—(खंडन) ।

कांद-ना—ग्र० (क्रन्दनं) रोना ।

किंकिया-ना, केंकियाना—ग्र० (ग्रनुकारी शब्द) की या के-कें का शब्द करना ।

किटकिटा-ना—स० (किट किट ग्रनुकारी शब्द) दाँत किट किटाना या कट कटाना ।

किरकिराना—ग्र० (किरकिरी) किर<वि+किर्—यह ग्रनुकारी शब्द जान पड़ता है ।

किलक-ना—ग्र० (किल—किलकिला) हर्षध्वनि, मूल शब्द 'किल' जान पड़ता है ।

किलक—किल+क स्वार्थे । किल से खिल (खिलखिलाना में खिल) ।

किलकिल—वानरादि का हास्य सूचक शब्द ।

प्रयोग—ग्ररे किलक मैं नेक निहारूँ—गुप्त ।

कीन-ना—स० (क्रीणन; √क्री द्रव्य विनिमयं । प्रा० किणइ ।)

कुचल-ना—स० (कु+चल) ।

बुरे ढंग से चलना, जिससे कोई चीज या प्राणी दब जाय । कुचाल । कुचाली ।

कुट-ना—ग्र० (√कुट्ट प्रतापने) >कुट्टनं प्रा० कुट्टइ । कुटाई । कुटवाई । कुटवास । कुटम्मस ।

कुढ-ना—ग्र० (कुढ़<क्रुद्ध√क्रुध्)

भीतर भीतर क्रोध करना, जलना, चिढ़ना ।

क्रि० स० कुढाना । कुढन ।

कुम्हला-ना, कुँमलाना—ग्र० (कु-म्लान√म्लै हर्षक्षये) ।

कुरेद-ना—स० (कर्त्तन 'श० सा०)

करोदना, खरोदना भी इस कुरेदना के रूपान्तर जान पड़ते हैं ।

कुरकुरा-ना—ग्र० ('कुर कुर' ग्रनुकारी शब्द)

कुरकुरा वि० । खुरखुरा (ग्रल्प प्राण से महाप्राण)

कुरकुराहट । (खुरखुराहट) ।

कुलकुला-ना—अ० (कुलकुल अनुकारी शब्द)

'कुलकुल'-प्रयोग 'अलिकुल कुलकुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा।
—प्रसाद

'कुरकुर'-'कुलकुल'-र कठोरता और ल कोमलता का व्यञ्जक है।

कुहुक-ना, कुहुकना—अ० (कुहुक या कुहू शब्द करना)।

कूँच-ना—स० (कूँच<कुञ्चन। √कुच् √कुञ्च् गतिकौटिल्याल्पी भाव योः)।
कूँचा (झाड़ू), कूँची।

कूचा—आम का एक प्रकार का अँचार जो आम को कूँचकर बनाया जाता है।

कूँथ-ना, कूथना—अ० (व्यु० ?)।
कुथन-कांखना। प्रे० कुँथाना, कुँथवाना।

कूक-ना—अ० (कूकनं-कू+क? कोयल का 'कू कू' शब्द कूक से नाम० धातु।

कूज-ना—अ० (कूजनं, √कूज् अव्यक्त शब्द)।

कूत-ना—स० (कूत-आ+कूत)।
मूल्य या परिमाण का अनुमान करना।

कूदना—अ० (कूर्दन)। √कुर्द, क्रीडायाम्। √स्कुद आप्रवणे (कूदना) से भी सम्भव।

कोंच-ना—स० (कुच् कुञ्च् गति कौटिल्याल्पीभावयोः।
चुभाना।
कोंचना-खोंचना (अल्पप्राण से महाप्राण)।
कोंचाई। कोंचाहट।

कोड़-ना—स० (कोड़—√कुट् प्रा० कोडइ। √कुण्ड् ?)
कोड़ाई। कोड़ना का रूपान्तर गोड़ना जान पड़ता है (वर्गीय प्रथम का वर्गीय तृतीय में परिवर्त्तन)।

कोप-ना—अ० (कोप-कुप् क्रोधे)। प्रा० कुप्पइ।
कोपना के स्थान पर गद्य में प्रायः कोप करना का

तत्सम संज्ञाओं मे प्राय: करना, होना सहायक क्रिया का प्रयोग होता है।

कोस-ना—स० (क्राशण–√क्रश् आह्वाने रोदने च।)

कौंच-ना—अ० (कौच√कुच्)
भोजपुरी में चिढ़ने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

कौंध-ना—अ० (सं० कनन=चमकना—अंध ? श० स०। मेरे विचार मे यह √कन् दीप्ति कान्ति गतिपु और अंध के योग से बना है। कन+अध—चमक से अधा होना।

ख

खँगाल-ना, खँघारना—स० (क्षालन 'श० सा०)
हल्का धोना, खाली कर देना।

खखार-ना—अ० (यह 'खर' शब्द से बना हो सकता है। 'खर' अनुकारी शब्द)।
'खरखर' का शब्द निकालते हुये गले से कफ निकालना।

खट-ना—स० (कदाचित् 'कठ' जिससे 'कठिन' बनता है खट का सम्बन्ध है। √कठ् कृच्छ्र जीवने। खटकाक्षायाम् से भी व्युत्पन्न हो सकता है।)
खट (संज्ञा)—दो वस्तुओ विशेष कर लकडी (काठ) के टुकड़ों के टकराने का शब्द। खटखट—खट की द्विरुक्ति से।
खटाखट।

खटक-ना—अ० (खट+क)
खटखट का शब्द होना। बुरा मालूम होना।
क्रि० स० खटकाना। खटका।

खड़क-ना—अ० (खटक का रूपान्तर ट का ड)।
खडकना। खड़काना। खडखड़ाना।

खड़बड़ा-ना—अ० (खड+बड से)
घबराना। बेतरतीब होना।

नीचे दिये शब्दों का गठन देखें।
खड़बड़ाना — खड़बड़ी — गड़बड़ी

खतिया-ना— स० (खाता से नाम धातु)
खाते में अलग-अलग मद् में लिखना।

खदबदा-ना—अ० (खदबद-खद्)। खाद्य पदार्थ के उबालने में होनेवाला शब्द खद् (√खद्) होना।
अन्य रूप—खुदबुदाना।
आदि अ के स्थान पर इ अथवा उ का होना अनेक शब्दों में देखा जाता है।

खदेड़ना, खदेरना—स० (भोजपुरी में इसी अर्थ में खेदना या लखेदना आता है।) खेदना और खदेड़ना एक ही मूल के शब्द हैं। खेद कदाचित् खेट (आ+खेट) से निकला है। खेट √खिद् से।

खन-ना—स० √खन्।

खनक-ना—अ० (खन<क्वण् अव्यक्त शब्द। खन+क)।
किसी धातु के आघात से उत्पन्न शब्द।
खनकाना।

खप-ना—अ० (√क्षप् क्षेपेप्रेरणे च)।
काम में आना। लगना। निभना।
खपत—खप+त।

खर्च-ना, खरच-ना—स० (फा० खर्च)
खरचाना। प्रे० खरचवाना। खर्चीला।

खराद-ना—स० (खराद<खर्राद फा०।)
खराद एक औज़ार।

खरीद-ना—स० (खरीद फा०,>क्रीत से सम्बद्ध।

खरोंच-ना—स० खरोंच=खर+नोच ? खर=तीक्ष्ण।

खरोंट-ना—स० (खरोंट—खर+ओंट ?)
नख या किसी तीक्ष्ण वस्तु से नोचना।

खल-ना—अ० (खल=दुष्ट)।
दुष्ट के समान अप्रिय लगना।

खलबला-ना, खरमरा-ना—प्र० (खल+बल खस>किसी वस्तु में गड़बड़ी या प्रस्त व्यस्तता होना।)

खलिया-ना—स० (खाली से नामधातु)
इसका एक अर्थ है खाल उतारना—इस अर्थ में खाल>क्षाल से सम्बद्ध है। क्षाल से छाल भी।

खसक-ना, खिसकना—प्र० (खस+क) खस स्खल के स्ख के वर्ण विपर्यय से कदाचित् निकला है।

खसोट-ना—स० (खसोट—खस+ओट) खस>कृष्<कस। कस से खस।

खाँच-ना—स० (खाँचना, प्रा० कंछ अप० खंच।)
खाँचा=पतली टहनियों का बना टोकरा।

खाँस-ना—प्र० (खाँस<का स। क का ख। अनुनासिकता) खाँसी।

खा-ना—प्र० (खा<खाद् के अन्तिम व्यञ्जन लोप से)
प्रे० खिलाना (आ, ई, ए में अन्त होनेवाली सकर्मक धातुओं में, प्राय: प्रेरणार्थक रूप में, ल का आगम होता है। जैसे—सी–सिलाना, दे–दिलाना, रो–रुलाना)।
खाऊ। खवैया। खिलाई (संज्ञा)।

खिया-ना—प्र० (खी√क्षि क्षये)।

खिसिया-ना—प्र० (खीस=कोप, खीस से नामधातु।)
खीझ और खीस√खिद् से)।

खींच-ना—स० (√कृष्–प्रा० कंढ, खींचना<कर्षण)।
क्रि० प्र० खिचना। प्रे० खिचवाना। खींचाखींची। खींच-तान। खिचाव। अन्य रूप–खेंचना।

खीझ-ना—खीज-ना—प्र० खीझ<खिद्य √खिद्।
खिझना। खिझाना।

खुँदा-ना—स० (खुँद–स्कुन्द√स्कुदि आप्रवणे)।

खुजला-ना—स० (खुज–खज्जु–खर्जुनं)।
खुजली (एक रोग), खुजलाहट।

खुद-ना—स० (खुद्√खंड भेदने)।
खूँद-ना।

खुटक-ना—स० (खुट+क, खुट<क्षुत से)।
किसी वस्तु को ऊपर ऊपर तोड़ लेना।

खुभ-ना—अ० (खुभ√क्षुभ् संचलने)।
क्रि० स० खोभना। खुभाना। खोभा (उदरशूल)।

खुरखुरा-ना—अ० ('खुरखुर'-अनुकारी शब्द, खुर√कुर् शब्द)।
खुरखुराहट।

खुरच-ना—स० (खुरच्√क्षुर्) विलेखने। 'कूर्च' से भी सम्बन्ध जान पड़ता है।
खुरचन। खुरचनी।

खुल-ना—अ० (खुल-√खुड्।) खुड्यते–प्रा० खुड्डइ या खुल्लइ–हार्नली, मेरे विचार में खुल और खिल दोनों 'खेला' से सम्बद्ध हैं। फूल खिलता है तो उसका मुख खुल जाता है।
क्रि० स० खोलना। प्रे० खुलवाना।
खुल्लमखुल्ला।

खूँद-ना—अ० (√खुदि खण्डने।)
पैरों से रौंदना।

खे-ना—स० (√क्षिप् प्रेरणे, क्षेपणं।)
खेप-ना—स० (क्षेपणं)।
खेल-ना—अ० (√खेला विलासे)।
खेलवाड़, खिलवाड़।
खेलवाड़ी, खिलवाड़ी, खिलाड़ी।
खेलौना, खिलौना।

खोंट-ना—स० (√खुडि खण्डने)।
किसी वस्तु का ऊपरी भाग तोड़ लेना। साग खोंटना।
खोंस-ना—स० (खोस√कुस् संश्लेषणे।)
खोज-ना—स० (खोज<खोद्य प्रा० खोज्ज।)
प्रे० खोजवाना।
खो-ना—स० (खो√क्षिप्क्षये।)
खौल-ना—अ० (√क्ष्वेळ् चलने ?)

ग

गँधा-ना—अ० (√गंध) नामधातु ।

गँवा-ना—अ० (√गम् गतौ) ।
निकल जाने देना, खो देना ।

गछ-ना—स० (गछ<गच्छ) ।
अपने ऊपर लेना ।

गटक-ना, गुटकना—अ० (गुट्<गुटका) ।
निगलना (गोली की तरह) ।

गठ-ना—अ० (गठनं) ।
क्रि० स० गठाना प्रे० गठवाना ।
गठाव । गठीला ।

गँठिया-ना, गठिया-ना—स० (गाँठ<ग्रन्थि से नामधातु) ।

गड़ना—अ० (गड>गर्त√प्रा० गड्ड) ।
क्रि० स० गाड़ना, प्रे० गड़ाना, गड़वाना ।
गड़प=गड+प ।

गड़गड़ा-ना—अ० ('गड़ गड़' अनुकारी शब्द) ।
गड़गड़ शब्द करना । गरजना ।
गड़गड़ाहट ।

गड़बड़ाना—अ० (गड़+बड़-गड्ड बड्ड । गड्ड<गर्त ।
बड़=बड़ा । बड़ा गड्ढा जहाँ हो, ऐसा असम स्थान, अतः क्रमहीनता ।)*
गड़बड़िया=गड़बड़+इया (कर्तृ प्रत्यय) ।

गढ़-ना—स० (<घटनं) ।
प्रे० गढ़ाना, गढ़वाना ।
गढंत । गढ़िया । गढ़वैया ।

गदरा-ना—अ० (व्यु० ?) ।

गनगना-ना—अ० (व्यु० ? कदाचित् अनुकारी शब्द) ।
शरीर का सिहरना ।

---

* गड़गड़, बड़बड़, खड़खड़, धड़धड़, फड़फड़, भड़भड़ आदि शब्दों के गठन को देखें । सबके अन्त में अड़ की ध्वनि विद्यमान है और सब द्विरुक्ति से बने हैं । ये शब्द अनुकारी हैं ।

गपक-ना—अ० (गपक—गप+क) अनु० ।
झट से निगलना ।

गमक-ना—अ० (गम+क, व्यु० ?)

गरज-ना—अ० (<गर्जन) ।

गरमा-ना—अ० (<घर्म<गर्म फा०) ।
क्रि० सं० गरमाना ।
गर्मी, गरमाहट ।

गरुआ-ना—अ० (गरु<गुरु) ।
भारी होना ।

गल-ना—अ० (<गलनं) ।

गलिया-ना, गरिया-ना—स० (गाली<गालि: से नामधातु) ।

गह-ना—स० । (गह<ग्रह् , ग्रहणं) ।

गाँज-ना—स० (गाँज<गञ्ज फा०) ।

गाँठ-ना—स० (गाँठ<ग्रन्थि) ।

गाँथ-ना, गाथना—स० (ग्रथनं, ग्रन्थन√ग्रन्थ) ।

गाँस-ना—स० (गाँस<√ग्रस्) ।

गा-ना—अ० (<गायनं) ।

गाज-ना—स० (गाज—गर्जनं प्रा० गज्जनं) ।
'गाजा-बाजा' समास मे गाजा गाज से सम्बद्ध है ।

गार-ना—स० (<गारणं, गालनं) ।
गारा—चूना 'गारा' मे गारा ।

गिड़गिड़ाना—अ० (गिड़<गिर्—गिरा=वाणी) ।

गिन-ना, गन-ना—अ० (गिन<गण्) ।

गिर-ना—अ० (<गृ—गिरति के गिर से) ।

गीज-ना—अ० (गिजनं ?) ।

गुंगुआ-ना, गुंगियाना—अ० (गूँगूँ) अनुकारी शब्द ।
गूँगा—गूँगूँ करनेवाला ।

गुजर-ना—अ० (गुज़र फा०) ।
गुजारना ।

गुड़गुड़ाना—अ० ('गुड़गुड़' शब्द होना, अनु० ।)
गुड़गुड़ी ।

गुदगुदा-ना—स० (गुद् की द्विरुक्ति से) गुद=गूदादार मुलायम अंग छूना।
गुदगुदी ।

गुन-ना—स० (गुन<गुण) ।

गुनगुना-ना—अ० ('गुनगुन' शब्द करना, गुनकी द्विरुक्ति से) ।

गुम-ना—अ० (गुम फा०) ।
खो जाना ।

गुरर-ना—स० (गुरु+टेर या गुर+एर प्रत्यय, घूरना के घूर से गुर) ।

गुर्रा-ना—अ० ('गुर'<गुरु) ।
डराने के लिये गुरु शब्द करना ।

गुह-ना—स० (गुह<ग्रथ्—ग्रथन) ।
गुहाना, गुहवाना ।

गुहरा ना, गोहरा-ना—('गोहार' से) ।

गुंजार-ना—अ० ('गुंजार' से) नामधातु ।

गूंज-ना—अ० (<गुंजन) ।

गूंथना—स० (गूंथ√ग्रन्थ, ग्रन्थन) ।
गुंथाना, गुंथवाना ।
विकल्प से गूथना भी ।

गोड़ना—स० (कोडना का रूपान्तर गोड़ना । वर्गीय प्रथम का तृतीय में बदलना ।)

गोद-ना—स० (खोदना का परिवर्तित रूप जान पड़ता है । वर्गीय द्वितीय का तृतीय में बदलना ।)

घ

घंघोल-ना—स० (घंघोल=घं+घोल । मूल शब्द घोल-जिसमें सम वर्ण घ का पूर्वागम होने पर घंघोल बना जान पड़ता है ।)
हिलाकर घोलना ।

घट-ना—अ० (√घट्<घटन) ।
आकस्मिक व्यापार होना ।

मटना का अर्थ कम होना। इस अर्थ में (घट्ट, घट्टयते प्रा० घट्टइ।)

घनघना-ना—अ० ('घन-घन' शब्द करना—अनु०)।
घनघनाहट।

घबरा-ना, घबड़ा-ना—अ० (हि० 'गड़बड़' से ?)।
(गड़बड़—घड़बड़—घरबर
घरबराना से घबराना, प्रथम र के लोप से।
घड़बड़ाना से घबड़ाना—प्रथम ड़ के लोप से)।

घमा-ना—स० (घाम से नामधातु। घम<घर्म प्रा० घम्म)।

घरघरा-ना, घड़घड़ाना—('घर्घर' से। अनु०) कंठ से 'घर्घर' शब्द निकलना। र का ड़ होकर घड़घड़ाना भी।

घसीट-ना—स० (घसीट<घृष्ट<घिट्ट प्रा०)।
अन्य रूप—घिसटना, घसिटना।
प्रे० घसिटवाना।

घहर-ना—अ० (घहरना—गहर का घहर। गहर<गंभीर।
घहराना।

घिघिया-ना—अ० (घिग्घी से नामधातु—घिग्घी व्यु० ?)।

घिस-ना—अ० (घिस<घृष् संघर्षे स्पर्धायां च। घिसना<घर्षणं।
घर्षति—घसइ प्रा०)।
घिसाना। घिसवाना।
घिस्सा। घिस्सू। घीसू।

घुघुआ-ना—अ० (घुग्घू (उल्लू) से व्यु० ?)।
घुघुआना—घुग्घू की तरह बोलना।

घुट-ना—अ० (घुट परिवर्तने। घुट् प्रतिघाते)।
दम 'घुटना'। इससे 'घोटना' भी बनता है। उ का गुण ओ होकर)।
घुटाना। घुटवाना।
घोंटना (भंग घोंटना)।

घुटक-ना—स० ('घूँट' से)।

घुड़क-ना—स० (√घुट् से, √घु शब्द भी। घुड़+क)।
घुड़की। (बन्दरघुड़की)।

घुमड़-ना—प्र० (घुम-घूम से । घूम√घुण् भ्रमणे या√घूर्ण भ्रमणे से)

घुल-ना—प्र० (घुल-'घोल्' से 'घूर्णति' प्रा० घुलइ)

क्रि० स० घोलना (उ का ओ)।

घुस-ना—प्र० (घुस-√घृषु संघर्षणे)।

क्रि० स० घुसाना । प्रे० घुसवाना ।

घुसेड़-ना—स० (घुसेड़-घुस+एड़)।

घूँट-ना—स० (घूँट से नामधातु। घूँट-कंठ से सम्बद्ध जान पड़ता है।)

घूम-ना—प्र० (<घूर्णनं । घूर्णति प्रा० घुम्मइ।)

घेर-ना—स० ('घेरा' से या घेर से, घेरा-घर<गृहं ?)

घोंप-ना—स० (घोप-खोंप-क्षेपणं√क्षिपप्रेरणे)।

घोल-ना—स० (घोल<घोप्)।

च

चँप-ना—प्र० √चप्-परिकल्पने (पीसने) चप्यते-चप्पइ प्रा०।

क्रि० स० चाँपना । चँपाना ।

चकचका-ना—प्र० (√चक् तृप्तौ प्रतिघाते च)।

रस का ऊपर आना, भीग जाना ।

चकपका-ना—प्र० (चक-चकित से चक-[चौंककर देखना) पक-पेक्ख>प्रेक्ष-चकपक-चकित प्रेक्षण।)

चकरा-ना—प्र० (चकर>चक्र, चक्कर>चक्क>चक्र)।

चकोट-ना—स० (चकोट-चुटकी से वर्णविपर्यय ?)।

चख-ना—स० (√चष् भक्षणे)।

चखाना । चखवाना । चखाई ।

चचोड़-ना, चिचोड़ना—स० (मूल शब्द चोड़ जान पड़ता है, जिसमें समवर्ण च का आगम । चोड़-√चुद् प्रस्नीभावे से सम्बन्ध जान पड़ता है। निचोड़ में क्या नि उपसर्ग है ?)।

चटक-ना, चिटकना—प्र० (√चट् भेदने) मारना, चोट पहुँचाना, चटक=चट+क)।

चट का अर्थ टूटना या फूटना है। 'चट' टूटने का शब्द भी। कली का चिटकना या चटकना।

चट का शीघ्र भी अर्थ होता है–चट से यह काम करो।

चट शब्द करके द्वार बन्द होने से चटकिनी, चिटकिनी कहते हैं। चटकन–मारने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

चटचटा-ना—अ० (चट् भेदने=चट चट करके फूटना या टूटना)। इसका अर्थ किसी लसीले पदार्थ के स्पर्श से (हाथ का) लसलसाना।

चढ़-ना—अ० (हार्नली सं० उत् शद्–उच्छदति)। उ का लोप करते हुये चडुइ या चडुइ बताते हैं। चर से भी चढ़ का सम्बन्ध हो सकता है। र का ड़ प्रायः होता है। ड़ का ढ़ हो सकता है। चडइ रूप भी प्राकृत में मिलता है। गुजराती, सिन्धी, बंगला में 'चंड' रूप मिलता है। कठिन या ऊँचे स्थान पर 'चरले' (चलने) के लिये 'चढ़ले' का प्रयोग होता है। चर, चड़, चढ़ एक ही शब्द के भिन्न रूप जान पड़ते हैं।

चढ़ाई। चढ़ाव। चढ़ावा। चढ़ाचढ़ी। चढ़ाना। चढ़वाना। 'कढ़ाई चढ़ाना'–कटाहिश्च चटापतें–(वस्तुपाल प्रबन्ध) सं० चटापयति। इससे अनुमान होता है कि संस्कृत में 'चट' कोई धातु थी।

चपक-ना, चिपक-ना—अ० (चप+क>प्रा० चपकइ)। चपकाना, चिपकाना। चपकन (एक वस्त्र विशेष)।

चपट-ना, चिपट-ना—अ० (चप+ट)।

चपेट-ना—स० (चप+एट, चपट का ही रूपान्तर)।

चबा-ना—स० [>चर्वणं√चर्व अदने]। प्रे० चबवाना।

चभा-ना—स० [चमाना>चर्वणं]। चभाना चबाना से ही सम्बद्ध है। चभाना का अर्थ है खिलाना।

चमक-ना—अ० [चमक—चम+क<चमत्कृ से ?]
चमकाना । चमकवाना । चमकीला ।

चरचरा-ना—अ० ['चर चर' शब्द कर टूटना । अनु०] ।

चर-ना—अ० [√चरगतौ] पशुओं का विचरण करते खाना ।]
चराना । चरवाना । चरवाहा । चराई । चरवैया ।

चल-ना—अ० [√चरगतौ या √चल्कम्पने ।]
चलाना । चलवाना ।
चलावा । चलाई ।

चहक-ना—अ० [चह पक्षियों का शब्द । चहक—चह+क] ।

चहचहा-ना—अ० ['चह चह' शब्द करना । अनु० ।]

चाट-ना—स० [चाट—'चट' से । चट अनुकारी शब्द जान पड़ता है ।]
अथवा यह चाटु से सम्बद्ध है ।
चटाना । चटवाना ।

चिकना-ना—स० [चिकना<चिक्कण से नामधातु] ।
चिकनाई । चिकनाहट ।

चिकर-ना—अ० [चिकर>चीत्कार] ।

चिचिया-ना—अ० [चीं ची रोने का शब्द] करना । नामधातु ।

चिड़चिड़ा-ना—[जलने में 'चिड़चिड़' शब्द होता है । चिड़चिड़
अनुकारी शब्द] ।
चिड़चिड़ाहट ।

चिढ़-ना—अ० [चिड़ का ही रूपान्तर चिढ़, हानेली √क्षिप्] ।
चिढ़ाना ।

चिपाड़-ना—स० ['चिपड़ा' से क्रिया, चिथड़ा = चिप+डा 'चिप' चिट
का रूपान्तर ज्ञान पड़ता है । <चीर्ण ?]

चिमट-ना—स० [चिमट चिपट परस्पर सम्बद्ध जान पड़ते हैं ।]
चिमटाना । चिमटा ।

चिल्ला-ना—अ० [चिल्ला—अनु० ?] चिल्लवाना ।

चीख-ना—अ० [चीख—चीत्कृ अथवा+चीक आमर्षणे] ।

चीर-ना—स० [<चीरयति के 'चीर' से ।]
क्रि० स० चिराना । चिरवाना । चिरवाई । चीरा ।

चुक-ना—अ० [च्युत्+क, प्रा० चुक्कइ। अथवा√च्यु+क संस्कृत में एक धातु चुक्क्व्यथने भी है]।
चुकाना। चुकवाना। चुकती।

चुग-ना—अ० [<चुग व्यु० ?]।
चिड़ियों का चोंच से उठाकर दाना खाना।
चुगाना। चुगवाना।

चुचकार-ना—स० [चु चु कर प्यार करना। अनुकारी शब्द।]
'चु चु' कदाचित√चुम्ब् के चु को लेकर बना है।

चुमकार-ना—स० [चुम—चूम—√चुम्ब्]।

चुनचुना-ना—अ० [चुन, चुन अनुकारी शब्द]।

चुन-ना—स० [चुन>चयन√चि]।
चुनाना। चुनवाना। चुनाव।

चुभला-ना—अ० [चाभ' से चभलाना]।

चुभ-ना—अ० [चभ<दृभ् ?]।
चभाना। चभवाना।

चुरा-ना—स० [√चुर् स्तेये]।
अन्य रूप चाराना।

चुलबुला-ना—अ० [चुलबुल' से नामधातु, चलबुल व्यु० ?]।

चू-ना—अ० [√च्यु गतौ, च्यवते, चुच्यवे आदि रूप देखें]।
प्रे० चवाना।

चूम-ना—स० [चूम√चम्ब्]।

चूस-ना—स० [√चूष<चूषण]।
चुसाना। चुसवाना। चुसनी।

चोंथ-ना—स० [चांथ से चांथना नामधातु।
चोंथ<√चण्ट छेदने]।

चाटिया-ना—स० [चाट से नामधातु। चाट>√चट् छेदने से]।

चौंक-ना—अ० [चौंक—<चमत्+क]।
चौंकाना। चौंकवाना।

चौंध-ना—अ० [चो+अंध, चौ<चतुर]।
चौंधियाना—चौंध से नामधातु।

चौपट-ना, चपट-ना—स० [चौ+पट <पट्ट चतुर्पट्ट ।]

चारसा-ना—स० ['चारस'<चतुरंसा । चौ<चतुर् रसा=धरती] ।
चारस करना ।

छ

छँट-ना-अ० [छँट<छुट छुट् छेदने] ।
छाँटना । प्रे० छँटाना, छँटवाना ।
छँटाई । छँटैल । छाँट=वमन, दस्त ।

छक-ना-अ० [छक√चक् तृप्तौ प्रतिघाते च] । छाक ।
छकना का अर्थ धोखा खाना, चकराना भी होता है । इस अर्थ में छक चक्र से निकला जान पड़ता है ।

छज-ना—स० छकाना । प्रे० छकवाना ।
अ० [छज<सज] ।

छटक-ना, छिटकना-अ० [छट+क] छट का छिट<क्षिप्त 'क्षिप्+क्त' प्रा० छिटकइ ।
स० छटकाना, छिटकाना ।

छटपटा-ना-अ० [छट पट—क्या यह छाती पीटने की क्रिया सूचित करने के लिये छाती+पीट के लघ्वीकरण से बना है ?]

छतिया-ना-स० [छाती से नामधातु] ।

छन-ना-अ० [√स्यन्द् से छन] प्रा० छन्दइ ।
छानना । प्रे० छनाना, छनवाना ।
छन्ना=छन् +न्+आ ।

छनक-ना-अ० [छन+क, क्षण से छन] जल्दी से चौकन्ना होना ।
छनकाना ।]

छनछना-ना-अ० [छनछन शब्द करना, अनु०] ।

छप-ना-अ० [√स्पृश से प्रा० छप्पइ होता है । मेरे विचार में यह √चप् या स्पृश् से है ।]
स० छापना । प्रे० छपाना, छपवाना ।
छपाई, छाप, छापा ।
छप-पानी के गिरने का शब्द । पानी में छपर-छपर करना ।
छपाका ।

छमक-ना—अ० [छम+क—छम का शब्द होना, अनु०]।
छमकाना। छमछम। छमाछम।

छरछरा-ना—अ० <क्षर् संचलने, क्षार<छार। छरछर की द्विरुक्ति से]।
छरछराना—कणों का सवेग एक साथ निकलने या झरने का शब्द।
छर्रा—छर्+र्+आ।

छल-ना—स० [<छलनं]। छलाना।
छली। छलिया। छलावा।

छलक-ना—अ० [छल—उत्—छल् के छल से]। छलकाना। छलकाव।

छलछला-ना—अ० [छलछल—जल का उच्छल होना।]
आँसू का छलछलाना।

छा-ना—स० [<छादनं—√छद् से छा]।
छानी—घास-फूस का छाजन।

छिड़क-ना—स० [छिटक का छिड़क—ट का ड़]।
प्रे० छिड़काना। छिड़कवाना। छिड़काव। छिड़काई।

छिड़-ना—अ० [छिड़ व्यु० ?]।
स० छेड़ना।

छिद-ना—अ० [√छिद्द्वैधीकरणे]।
स० छेद-ना। प्रे० छिदाना, छिदवाना।
छेद<छिद्र। छेद से छेदी।

छिन-ना—अ० [छिन<छिन्न]।
स० छीनना। प्रे० छिनाना, छिनवाना।

छिप-ना—अ० [<क्षिप् प्रेरणं फेंकना ?]।
फेंकने पर, कोई वस्तु दूर हो जाने के कारण छिप जाती है। अतः छिप—√क्षिप् से निकला हो सकता है।
स० छिपाना। प्रे० छिपवाना।

छिल-ना—अ० [छिल कदाचित् छिन का ही रूपान्तर है। कहीं-कहीं न का ल होता है। √छुर् भेदने से भी सम्बद्ध हो सकता है]।
छीलना। छिलाना। छिलवाना।
छिल का। छिलाई, छिलाव। छीलन।

छींट-ना—स० [छींट—'छिन्न' करना। कदाचित् छिन्न का केवल छीं ग्रहण किया गया। 'ट' प्रत्यय हो सकता है। अथवा क्षिप्त से]। छिटाना, छिटवाना। छींटा।

छीज-ना—अ० √क्षि क्षये। क्षियते प्रा० छिज्जइ।

छुट-ना—अ० [छुट<क्षिप्त—प्रा० छुत्त, छुट्ट]। छूटना।

छुड़ा-ना—स० [छुट से छुड़—√श्विड् स्नेहमोचनयोः। प्रे० छुड़वाना। स० छुड़—से छोड़ [गुण रूप] क्षोरणं ?

छुलछुला-ना—अ० [√क्ष्वेल् चलते 'काँपना' से कदाचित् सम्बद्ध।] छुलछुलाना=थोड़ा थोड़ निकलना।

छू-ना—स० [√छुप् स्पर्शे]। प्रे० छुलाना, छुलाना।

छूत=छू+त।

छेक-ना—स० छे—छिद् से छेद। छेद का छेक रूप भी मिलता है।

प्रयोग—सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाहा एक।
लागत ही भुँइ मिलि गया परा करे जे छेक॥—कबीर

छेक और छेद दोनों एक ही मूल के हैं। मूल शब्द है छे। दे० छेनी—छे+नी। छेकवाना। छेका।

छोप-ना—स० [छोप<क्षेप√क्षिप्]। छोपवाना। छोपा।

छौंक-ना—स० [छौं—अनु० छौंक=छौं+क]।

ज

जँच-ना—अ० [जँच—जाँच का अक०]। जाँचना<याचनं√याच्॥

जँभा-ना—अ० [जँभ<जृम्भा√जृम्भा गात्रविनामे। <जृम्भणं। जभ् गात्रविनामे 'जँभाई लेना' भी एक धातु है।]

जकड़-ना—स० [जक फा०=हार, पराभव+ड़=जकड़, अथवा ज+कड़। सं० जुट् बन्धने के जुट् का ज मात्र लेकर कड़ का योगद्वारा ज+कड़] जकड़ का अर्थ है कस कर, कड़े ढंग से जोड़ना या पकड़ना।

जग-ना—अ० अन्य रूप जागना। [√जागृ निद्राक्षये] प्रे० जगाना।

जट-ना—स०[जट का सम्बन्ध√घट् वर्णा-वर्णावरणयो.'तोड़ना, ढकना' से हो सकता है। आवरण में छिपाने से धोखा देने का भाव भी

आ जाता है।] जटना का अर्थ ठगना। जटाना का अर्थ ठगा जाना।

चंट का अर्थ धूर्त होता है। अतः चट् से जट निकला हो सकता है।

जड़-ना—स० [<जटनं] प्रे० जड़ाना, जड़वाना।

जड़ाई। जड़ाऊ। जड़िया। जड़वैया।

जड़ा-ना—अ० ['जाड़ा' से नामधातु। जाड़ा<जाड्य ?]

जता-ना—स० [ज्ञात—√ज्ञा अवबोधने। जता<ज्ञात] प्रे० जतलाना।

जन-ना—स० [√जन् प्रादुर्भावोजननं]।

जनम-ना—अ० [जन्म<जन्म] स० जनमाना।

जप-ना—स० [<जपनं√जप्]।

जपी। जापक। जपनी [माला]।

जम-ना—अ० (जमन>यमनं दा० सा०)।

उगना अर्थ में यह जन्म से ही निकला जान पड़ता है।

क्रि० स० जमाना। प्रे० जमवाना।

जमाव। जमावट। जमावड़ा। जामन (दही जमाने के लिए दिया जानेवाला दही या अन्य खट्टा पदार्थ)।

जल-ना—अ० (<ज्वलनं√ज्वल् दीप्तौ)। क्रि० स० जलाना। प्रे० जलवाना। जलावन।

जा-ना—अ० (√या प्रापणे)।

जान-ना—अ० (जान<ज्ञानं)। क्रि० स० जनाना। जाननहार।

जी-ना—अ० (जी–जीव् प्राणधारणे)।

जीत-ना—स० (√जिजये। जीत<जितिः)।

जीम-ना—स० (<जेमनं√जिम् भक्षणे)।

जुगा-ना—स० (√युज् योगे)।

जुट-ना—अ० (जुट<युक्त√युज् योगे)।

क्रि० स० जुटाना। प्रे० जुटवाना। जुटान। जुटाव।

जुठार-ना—स० (जूठार=जूठा+आर। जूठा<जुष्ट (दा० सा०)।

जुड़-ना—अ० (जुड़–जुट का रूपान्तर)।

जुड़वा। जोड़–जुड़ का गुण रूप।

जुड़ा-ना—स० (ठंडा करने के अर्थ में जुड़ाना से व्यु० ?) प्रे० जुड़वाना

जुत-नो—प्र० (जुत < युक्त, युत ?)

क्रि० स० जोतना—जुत का पूर्ण रूप।

प्रे० जुताना, जुतवाना। जुताई।

जुतिया-ना—स० (जूती से नाम धातु। जूती>जूति:०)।

जूझ-ना—स० (<युद्ध √युध् संप्रहारे)।

प्रे० जुझाना, जुझवाना। जुझार। जुझाऊ।

जेंव-ना—(<जेमनं)।

क्रि० स० जवाना। जेवनार।

जोख-ना—स० (जोख √जुष् परितर्कणे, परितर्पणे च।)

इसका अर्थ सोचना, परीक्षा करना, तृप्त होना। परीक्षा करने के अर्थ में √जुष् का 'जोख' हुआ है। जोखना=तौलना। लेखा-जोखा समास में 'जोख' देखिये। 'जोखू' नाम मिलता है—जोखनेवाला।

जोह-ना—स० (जोह—? √जुष प्रीतिसेवनयोः [चाहना, सेवन करना] ह्यार्नली सं० ज्योतिस् प्रा० जोएइ, जोअइ बताते हैं।)

झ

झँख-ना—अ० (झँख को विलप का प्राकृत धात्वादेश माना गया है। पर शब्द-गठन की दृष्टि से दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं दीखता।) ह्यार्नली सं० ध्याक्ष्—ध्वाक्षति प्रा० झंखइ मानते हैं। झींकना—इस झँखना का अन्य रूप जान पड़ता है।

झँझोड़-ना—स० (झोट या झोड़ में झ का आदि में आगम होने से झँझोड़ बना है। अथवा झंझा+झोड़ से झँझोड़। झा का अर्थ संस्कृत में झंझा है। अतः झँझोड़ना का अर्थ है झंझा की तरह हिलाना। झोरा—प्रा० झोड, झोड्इ (पदमावत संजीवन भाष्य पृ० ४२७) अन्य रूप—झँझोरना।

झँप-ना—अ० (झंप-अप० झंपइ। सं० क्षप्-क्षप्यते प्रा० झंपइ, स० झापना। प्रे० झँपाना, झँपवाना। झाँपी। झँपरी=मोहार। झँपान। झँपोला। झँपोली।

झँवरा-ना—अ० (झाँवर, झामर—झाँवर से नामधातु)। झाँव—<ध्याम =काला या मन्दा।

झकझका-ना—स० (झकझक-झक की द्विरुक्ति)। झक चक से सम्बद्ध जान पड़ता है वर्गीय प्रथम का वर्गीय तृतीय होना। झकझकाहट।

झकझोर-ना—स० (झक-झोंक से सम्बद्ध जान पड़ता है। झोर चाहे झोड़ का रूपान्तर है-ड़ कार अथवा जोर का झोर (ज का झ)।

झकोर-ना—स० (झक+झोर=झकोर) झक मूल शब्द जान पड़ता है। झकड़ शब्द देखें-झक+कड़।

झगड़-ना—स० (झगड़ा-झक का झग+ड़ा। झक विवाद अर्थ में 'बक+झक' समास में है। झगड़ालू।

झटक-ना—स० (√झट् <झटति<झड़इ प्रा० झटक=झट+क। झटका।

झटकार-ना—स० (झटकार=झटक+आर)। ऐसे कुछ शब्दों का गठन देखें—फटक-फटकार, सटक-सटकार।

झड़-ना, झरना—अ० (झड़ झर, र का ड़। <झरणं। झड़-झट। क्रि० सं० झाड़ना, प्रे० झड़वाना। झारना। झरवाना। झड़ी-झड़+ई।

प्रायः कोमल या तरल वस्तुओं के गिरने के लिये र वाला रूप आता है। जैसे—झरना झरता है। पत्तियाँ झरती हैं।

कठोर या वेग सूचित करने के लिये ड़ वाला रूप आता है। झड़ी-वर्षा की झड़ी। पत्ते झड़ते हैं।

झड़प-ना—स० (झड़ से झड़+प)। यह प प्रत्यय हड़प, तड़प; सड़प; गड़प आदि शब्दों में मिलता है।

झक-ना—अ० ('झन'-अनुकारी शब्द। झन+क)। हिन्दी महाप्राण वर्णों के बाद न के योग से अनेक ध्वनि-सूचक शब्द बनते हैं—जैसे-खन, छन, झन, घन, फन, भन। क प्रत्यय से खनक, झनक, भनक आदि। द्विरुक्ति से झनझनाना, खनखनाना, ठनठनाना, ढनढनाना आदि।

झनझना-ना—अ० ('झन' की द्विरुक्ति से)। झनझनाहट, झनाझन आदि शब्दों की तरह खनखनाहट, ठनठनाहट, भनभनाहट और खनाखन, ठनाठन, भनाभन आदि शब्द बनते हैं।

झपक-ना—अ० (झप+क) । झपकी । झपक—'लपक-झपक' समास में ।

झपट-ना—स० (झप+ट, झप<क्षिप्, क्षिप्त, झपटा, झपट्टा ।

झपेट-ना—स० (झपट से झपेट=झप+एट) । एट प्रत्यय से बने अनेक सदृश शब्दों को देखें—लपट से लपेट, चपट से चपेट, सिमट से समेट आदि ।

झमक-ना—अ० (झमक=झम+क । झम अनुकारी शब्द) । म से युक्त ऐसे सदृश शब्दों को देखें । चमक, ठमक । द्विरुक्त—झमाझम, धमाधम ।

झर-ना—अ० (झर<झर । निर्झर में निः+झर) झरोखा=झर+ओखा (जिससे होकर हवा या झड़ी आती है ।) झरना का अन्य रूप झिरना ।

झल-ना—अ० (झरना से झलना—र का ल) । 'पंख झलना' ।
झल का अर्थ दाह या गुस्सा करना भी होता है । यह झल ज्वल् से सम्बद्ध जान पड़ता है ।
झलका (फफोला) झाल । झलाना । झल का अर्थ झीना का भाव भी होता है ।
झलमल=झीना झिलमल का रूपान्तर झिलमिल ।

झाँक-ना—स० ('झाँक' श० सा० के अनुसार अध्यक्ष से । प्रा० अच-अक्खइ । अ का लोप होकर भक्खइ—झाँक) झाँकी ।

झाँस-ना—स० (झाँसा—झाँस+आ, फाँस के वजन पर झाँस गढ़ा जान पड़ता है ।)
'झाँसा पट्टी' समास में 'झाँसा' देखें ।

झाड़-ना, झारना—स० झाड़ू—(झाड़+ऊ) । झाड़न । झाड़ा= (पेट झड़ना) ।
झारना—प्रयोग—बाल झारना ।
झाड़ना—फर्श झाड़ना ।

झिड़क-ना—स० (झटक—झड़क—झड़क का रूपान्तर झिड़क) । झिड़की ।

झिल-ना—('झिल' का भेल युक्त रूप ।
झिल का अर्थ झीना भी होता है । झिलमिल—झलमल ।
झिल्लड़ । झिल्ली । झिलम ।

झीख-ना—अ० (झँखना का रूपान्तर। झींकना भी इसका रूपान्तर है।

झुँझला-ना—अ० (झुँ+झला व्यु० ?) झुँझलाहट।

झुक-ना—अ० (झुक—√क्षुप्+क)। प्रा० झुक्कइ—हार्नेली।
क्रि० स० झुकाना। झुकवाना। झुकाव।

झुठा-ना, झुठलाना—स० (झूठ+आना ल का मध्य में आगम। झूठ से नामधातु। झूठ>जुष्ट झुठाई।

झुनझुनाना—अ० (झुनझुन—झुन की द्विरुक्ति से अनुकारी शब्द। 'झुन' ध्वनि बोधक शब्द है)। झुनझुनी।
चुनचुना-ना, खुलखुला-ना, झुनझुना-ना आदि शब्दों का गठन देखिये।

झुर-ना—अ० (झुर—झूड़, जुर—<ज्वर।, ज का झ)। झुर्री—झुर्+र्+ई।
झुर—√ज्वल् से भी निष्पन्न हो सकता है।

झुलस-ना—अ० (झुलस=झुल+स। झुल<ज्वल्)।
क्रि० स० झुलसाना। प्रे० झुलसवाना।

झूम-ना—अ० (झूम ?) स० झुमाना। झूमक। झुमका। झूमर।

झूल-ना—अ० (झूल व्यु० ?) झूल। झूला। झूलन।

झेंप-ना—अ० (झेंप व्यु० ?)

झोंक-ना—स० (झोंक<क्षेप्+क—हार्नेली) झोंका, झोंक। झोंकाई।
प्रे० झोंकवाना।

झोर-ना—स० (झोर—जोर का झोर ज का झ।
झोरना=जोर से हिलाना।

झोल-ना—स० (झोर का रूपान्तर झोल)।
झोलना=हिलाना-कपड़े से झोलना। झोला।
झोल का अर्थ तरकारी आदि का पकाया रसा। इस अर्थ में ज्वल, ज्वाल से सम्बद्ध जान पड़ता है।

झौंस-ना—स० (झौंस—झौं+स)। झौंसाना।

ट

टँक-ना—म० (<टंकण) । स० टाँकना । प्रे० टँकाना, टँकवाना । टँकाई । टाँकी । टाँका ।

टँग-ना—म० (<टंगा=टाँग एक धातु√त्वङ्ग गतौकम्पने च है ।) √त्रङ्ग—हिलना । स० टाँगना । प्रे० टँगवाना । टाँगा । टाँगी ।

टकरा-ना—म० (टक्कर से नामधातु) टक्कर=टक्+कर । टक् ध्वन्यात्मक शब्द है ।

टघर-ना—म० (व्यु० ?) घी का पिघलना ।

टटोल-ना—स० । (>त्वक्-तोल स० सा०) मेरे मत में टोल, तोल का रूपान्तर है (त के स्थान पर ट) आदिक्षर ट की आवृत्ति से टटोल । ऐसी प्रवृत्ति अन्य अनेक शब्दो में दीख पड़ती है—खखोटना, खिचोड़ना आदि ।

टनक-रा—म० (टन अनु० शब्द, टन+क) 'टनटन' संज्ञा । आवृत्ति से-टनटनाना । टनकना से अन्य रूप टिनकना, टुनकना ।

टप-ना—म० ('टप' से; √स्तिप् क्षरणे ।) स्तिप्-'टिप्' । फाँदना अर्थ मे यह बिहार में चलता है । क्रि० स० टपाना । प्रे० टपवाना ।

टपक-ना—म० ('टप'-बूँद गिरने का शब्द, टप+क√स्तिप्-'टप' शब्द कर टपकना । टपकाना । टपकवाना । टपाटप ।

टर-ना—म० (टल का रूपान्तर, टर<त्वर से) । क्रि० स० टारना ।

टरक-ना—म० (टर+क) ।

टल-ना—म० (टर का रूपान्तर) । क्रि० स० टालना । टलाटली ।

टर्रा-ना—म० ('टरटर' कराना अनु० शब्द) टरटाना । टर्राना ।

टसक-ना—म० ('टस' से, टस+क) ।

टस का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं मिलता । 'टस से मस' होना । पर टस में किसी चीज के खसकने या खिसकने का भाव मिलता है । '√त्रस् ग्रहणे धारणे वरणे च' से तुलनीय । क्रि० स० टसकाना । प्रे० टसकवाना ।

टहक-ना—अ० ('टहक' व्यु० ?)। टहकाना = पिघलाना।
टहकना का अर्थ रह रह कर दर्द उठना।

टहल-ना—अ० (टहल व्यु० ?) टहल में हलना या हिलना का भाव है।
प्रे० टहलाना, टहलवाना। टहलुवा।

टान-ना—स० (तानना से टानना—त के स्थान पर ट)।

टिक-ना—अ० ('टेक' का अकर्मक रूप)। टिकाना। टिकवाना।
टिकान। टिकाव। टिकाऊ।
टिकाना का ही रूपान्तर ठिकाना (किञ्चित् भिन्न अर्थ में)।

टिघल-ना—अ० 'टिघल'—ताप से गलना व्यु० ?

टिटकार-ना—स० (टिटकार—टिट टिट कर हाँकना टिट अनु० शब्द)।
टिटकारी।

टिमटिमा-ना—अ० ('टिम'<तिम=ठंढा होना)।

टीक-ना—स० (टीका से नामधातु)।

टीप-ना—स० (√टिप्‌क्षेपे)। प्रे० सिवाना।
'टीपटाप'=बनाव शृंगार। यहाँ टीप का उक्त अर्थ नहीं लगता। टीप का एक अर्थ 'गाने में जोर की तान (श० सा०) होता है। 'टाप' एक अलंकार का नाम है। शायद 'टीपटाप' में इन शब्दों के अर्थ का कुछ प्रभाव हो।

टीस-ना—अ० (टीस व्यु० ?)

टूग-ना—स० (हिन्दी में 'टुनगी' (टहनी का अग्र भाग) एक शब्द है। टूगना का अर्थ है, थोड़ा सा काट कर खाना। शायद दोनों शब्दों का कुछ सम्बन्ध हो।

टूट-ना—अ० (टूट—√त्रुट् छेदने)।

टेक-ना—अ० (टेक—√टिक्, टेकते अथवा त्राय+क० हानेली)।
टेकाना। टेकान। टेकनी।

टेर-ना—स० ('टेर' से नामधातु। टेर<तार (स्वर)।

टो-ना—स० (टो<त्वक् से ?)

टोक-ना—स० (टो+क, या<स्तोक से)।
टोकना—संज्ञा—ग्राम्य शब्द, एक तरह का हंडा।

ठ

ठंड्डा-ना, ठंढाना—स० (ठड व्यु० ?)

ठकठका-ना—स० ('ठक्ठक्' अनु० शब्द। नामधातु)
ठकाठक। 'ठक' मारना इस अर्थ मे ठक<स्तक्।

ठग-ना—स० (ठग<स्थग)। क्रि० अ० ठगाना। प्रे० ठगवाना।
ठगनी, ठगिनी, ठगिन>ठगी, ठगपनी, ठगोरी, ठगौरी।

ठट-ना—अ० ('ठाट' से। ठाठ<स्थातृ। विकल्प से 'ठाठ' भी।)
ठट्ठर। ठठरी।

ठठा-ना—अ० (ठठाना का अर्थ मारना भी होता है—इस अर्थ में 'ठक' शब्द करते हुये मारना।
हँसना के अर्थ में 'ठठा' अट्टहास से निकला जान पड़ता है।

ठन-ना—अ० (ठन<स्थन ?)
ठनना=किसी काम का शुरू होना। ठानना।

ठनठना-ना—अ० ('ठनठन' ध्वन्यात्मक शब्द से नामधातु)।
ठनाठन, ठनाका।

ठमक-ना—अ० (थम—स्थेमन्)। न् का लोप स्थेम से ही थम भी निकला जान पड़ता है। क्रि० स० ठमकाना। सं० ठमक।
ठुमक भी ठमक का ही रूपान्तर जान पड़ता है।

ठहर-ना—अ० (<स्थिर)। ठहराना। ठहरवाना।
ठहराव। ठहराई। ठहरौनी।

ठान-ना—स० (अनु+स्थान के स्थान से)।

ठिठक-ना—अ० (ठि+ठक<स्थक् से या ठिठ<तिष्ठ से। ठिठ+क)।

ठिठुर-ना—अ० (ठुर—स्थिर। ठि का आगम ?)

ठुकरा-ना—स० (ठोकर से नामधातु)।

ठुमक-ना—अ० दे० ठमक-ना। ठुमक—ठुम+क। सं० स्थेमन्—के स्थेम से 'ठुम' हो सकता है। ठुमरी में भी कदाचित् ठुम शब्द है—ठुम+री।

ठेक-ना—अ० (टेक—टेक का रूपान्तर)। क्रि० स० ठेकाना। ठेका।

ठेल-ना—स० (ठेल—√तिस् गतौ—तेलयति, त का ठ।)

ठोक-ना—स० (ठुक से गुण ठोक। ठोक=आघात। ठोकर=ठोक+र। ठुक—अनुकारी शब्द। √ठौक्—जाना? (काले-धातु-कोश हिन्दी अनुवाद)।
ठोक—'ठोंक' भी (अनुनासिकता का योग)।

ड

डँकर-ना—(डकार का शब्द बैल या अन्य पशु का निकालना। अनु० शब्द)।

डकार-ना—('डकार' निकालने का शब्द। अनु० शब्द) डकार से नामधातु।

डगडगा-ना—(डग—डिग का रूपान्तर। डग की द्विरुक्ति से।)

डगमगा-ना—अ० डग+मग। डग—डिग एक शब्द जान पड़ते हैं। डिग माने हिलना। मग पर पग का डिगना।

डट-ना—अ० (डत<स्थित से?) डटाना।

डपट-ना—स० (डपट—दपट का रूपान्तर। दपट—दप<दर्प+ट।)

डबक-ना—अ० (डबक का रूपान्तर डमक और टमक भी। डब का डब अनु० शब्द जान पड़ता है।)

डबडबा-ना—अ० (डब का जल से कुछ सम्बन्ध जान पड़ता है। डूबना देखिये। डबरा में डब शब्द मिलता है—डब+रा। डाबर भी तुलनीय।

डर-ना—अ० (डर<दर√दृ भये)। डराना। डरवाना। डरावना।

डल-ना—अ० (√दल विदारणे (फटना, फैलना)। फैलना अर्थ में दल का डाल हो सकता है। क्रि० स० डालना। प्रे० डलाना, डलवाना।

डँस-ना—स० (<दंशनं—√दंस् दर्शन दंशनयोः)।

डहडहा-ना—अ० (डहाडहाना—सहलहाना एक ही शब्द का रूपान्तर हो सकता है। ड का स में परिवर्तन होता है। वैदिक स- प्रायः ड में परिवर्तन होता है। सह निकलता है।

डाँट-ना—स० (डाँट<दाण्ड? दाण्डिकः=डाँटनेवाला, दण्ड डँटाना। डँटवाना।

डाक-ना—स० (इसका अर्थ फाँदना होता है।) सं० टंगा, टंका का अर्थ टाँग होता है। शायद यह टंका से निकला हो—टंका–डाक? ट का ड, क का ग होकर।

डिग-ना—अ० (डिग—टीक् गतौ जाना, हिलना)।

डुबाना, डुबोना—स० ('डुब' डब से सम्बद्ध है, यह हम दिखला चुके हैं।) क्रि० अ० डूबना। प्रे० डुबवाना। डुब्बा। (पनडुब्बा में) डुबकी। डूबना का वर्ण विपर्यय से बूड़ना। बुड़ाना भी।

डुल-ना—अ० (√दुल् उत्क्षेप (इधर-उधर हिलाना)। एक धातु√डुल् भी है—डोलयति) डुलाना। डुलवाना।
डुल—का गुण रूप डोल। डोलना।

ढ

ढँक-ना, ढक-ना—स० (ढक<स्थग्+क (हार्नली) प्रा ढकइ।
एक धातु√तक्ष् त्वचने त्वचसंवरणं त्वचो ग्रहणं च (काले धातु कोश)। इस तक्ष् से भी 'ढक' निकल सकता है। तक्षति प्रा० तक्खइ=थक्कइ=ढकइ। हार्नली। मेरे मत में यह √तक्ष् त्वचते ही से निकला है।)
क्रि० स० ढाँकना। प्रे० ढँकवाना। ढक्कन। ढकना। ढकनी।

ढँप-ना—अ० (ढँप—ढँक-समानार्थी हैं। ढाँपना।

ढकेल-ना—स० (धक्का से धकेल, धकेल से ढकेल। √धक्कनाशने।

ढकोस-ना—स० (ढक ढक–पानी पीने के समय कंठ का शब्द। ढकोस–ढको+स।
मकोस के वजन पर ढकोस बना. जान पड़ता है।
ढकोसना–एक बार ही बहुत सा पानी पीना।

ढल-ना, ढुल-ना—अ० (ढालना से अकर्मक रूप। ढलक (ढल+क)।
अ० (√दुल् या √डुल से ढुल)। ढुलक-ना (ढुल+क)।
ढुलकना, ढुलना लगभग समानार्थी शब्द। ढुलाई। ढुलवाई।

ढह-ना—अ० (ढह्–ध्वं० ?) क्रि० स० ढाहना। प्रे० ढहवाना।

ढाल-ना—स० (ढाल–'धार' से ? ध का ढ। र का ल)।
ढालना का अर्थ किसी द्रव पदार्थ का नीचे डालना या धार बना कर गिराना या उड़ेलना है। 'डाल' से भी ढाल बन सकता है–ड का ढ।

ढील-ना—स० (ढील>शिथिल से। क्रि० अ० ढिलाना। ढिलाई।
ढिल्लड़। क्या इसके वर्णविपर्यय से लढड़ बना है?

ढुक-ना—अ० (ढुक–व्यु० ?) ढुकाना, ढुकवाना।

ढूँढ-ना—स० (<ढुंढनं)। ढुँढवाना। ढुँढ़वाई।

त

तक-ना—अ० (तक>तर्कणं)। ताकना। तकवाना।

तड़क-ना—अ० ('तड़ तड़' अनुकारी शब्द। तड़क=तड़क।) तडित में भी 'तड' है। बिहार में कहीं कहीं तडित को 'तड़का' कहते हैं। 'तड़के' भोर के लिये प्रयुक्त होता है। पौ फटना में भी 'फटना' में तड़कने या टूटने का भाव है। तड़काना।

तड़प-ना—अ० (तड़प=तड़+प।) प प्रत्यय अनेक शब्दों में दिखाई पड़ता है–झड़प, तड़प, धड़प आदि। तड़पाना।
तड़प से तलफ, भी सम्बद्ध जान पड़ता है। तड़पड़ाना, तलफलाना, तड़फड़ाना आदि रूपान्तर देखे जाते हैं।

तज-ना—स० (तज–√त्यज् हानौ)।

तन-ना—अ० (√तन् विस्तारे)। क्रि० स० तानना। प्रे० तनवाना। तनतनाना–द्विरुक्ति से।

तप-ना—अ० (√तप दाहे।) क्रि० स० तापना। तपाना। तपवाना।

तपक-ना—अ० (तप+क)।

तमक-ना—अ० (तम>ताम्र)। तम+क चेहरा ताम्र की तरह क्रोध में लाल हो जाना।

तर-ना—अ० (=तृ तरणे, <तरणं)। क्रि० स० तारना>तारणं।

तरस-ना—अ० (=तृष् पिपासायाम्)। प्रे० तरसाना। तरसवाना।

तराश-ना—स० (तराश फा० से)।

तरेर-ना—स० (व्यु० ?) श० सा० के अनुसार सं० तर्ज+हेर।

तल-ना—स० (<तरणं)=घी-तेल में डाल कर तारना।

तव-ना—अ० (तव–ताव>ताव से =तपे)।

तहा-ना—स० ('तह' व्यु० ? से नाम धातु।)

ताग-ना—स० (ताग>तार्कव) अ० सा०।

तकुं–(तकुरी) पर से निकला त। सूतकुरी–तकलो–टेकुरी इसी शब्द से निकले हैं। तागा का ही रूपांतर धागा जान पड़ता है। तगाना। तगवाना। तगाई।

तिनक-ना—अ० (तिनकना, टिनकना, टुनकना–सब एक ही मूल के शब्द जान पड़ते हैं। अर्थ में सूक्ष्म भेद हैं।–व्यु० ?) तिलकना = झल्लाना।

तिर-ना—अ० (=तिर<तृ)। क्रि० स० तारना, तिराना।

तिलमिला-ना, तिरमिराना—अ० (तिरमिर)–इसका सम्बन्ध तिमिर से वर्णविपर्यय से जान पड़ता है।

तुतला-ना—आँखें तिलमिलाना-(चौंधयाना)। क्रि० अ० 'तुतली से नामधातु।

तुरप-ना—स० (तुरप=तुर त्वरणे) शीघ्रता करना। तुरप–तुर+प= शीघ्रता से एक खास तरह की सिलाई।

तुल-ना—अ० (=तुल् उन्मान) तोलना, परीक्षा करना। इसका गुण रूप–तोलना, पुनः वृद्धिरूप।

तेहरा-ना—स० (तेहरा–ते+हरा) से नामधातु।

तैर-ना—अ० (तैर<तृ प्लवनतरणयोः)। प्रे० तैराना, तैरवा।

तोड़-ना—स० (तुड़<त्रुट् छेदने)। तुड़ से गुणरूप। क्रि० स० तोड़ना। त्रोटयति के त्रोट से।

तौल-ना—स० (तुल् से तोलनं)। तौलाना। तौलवाना। तौला। तौलाई।

त्याग-ना—स० ('त्याग' से)।

थ

थक-ना—अ० (√स्थग्) थकावट।

थकिया-ना—स० (थाक से नामधातु। थाक<स्तोक)

थपक-ना—अ० (थप+क)। =स्थल् स्थाने=स्था—स्थापनं-से थप तथा क प्रत्यय। थप से थाप।

थपकी। थपथपी। थप्पड़। थपेड़ा। थपोड़ी। थपक—में मूल थप है। थप से थापना (स्थापनं)।

थम-ना—अ० (थम√स्तुम् स्तम्भे। एक धातु √स्तुम्भ् रोधने धोरणे च भी है।

थरथरा-ना—अ० (थर<थर्व-चंचलता का वाचक है (दे० अथर्ववेद भाग १—सातलवेकर)। थरथरा-थर की द्विरुक्ति थर्राना। थरथरी। थरथराहट। थहराना—थहर भी थर से, ह का मध्य में आगम द्वारा।

थाह-ना—स० (थाह—व्यु० ?) श० सा०—'स्थान' से। स्था से था निकल सकता है। तब ह का आगम। थहाना। थहवाना।

थिर-ना—अ० (थिर>स्थिर) थिराना।

थिरक-ना—अ० (थिरक=थिर+क)।

थूक-ना—स० ('थू' ध्वन्यात्मक शब्द। थू+क। <थूत्कार-अनुकारी शब्द) थुकाना। थुकवाना। थुथकार, थुड्डी=थु+ड्डी।

थूर-ना—स० (थूर<थुर्वं हिंसायाम्)=मारना, कूटना, चोट पहुँचाना। थुराई।

थोप-ना—स० (थोप—थाप का ही रूपान्तर थोप अथवा थोप<स्तूप से थोपना=छोपना।

द

दग-ना—अ० (दग<दग्ध)। दागना। दगाना। दगवाना।

दगदगा-ना—अ० (दग+दग+आना)। दग ध का तद्भव होने के कारण दग में ज्वाला की चमक का भाव निहित है।—चमकना।

दनदना-ना—अ० (दन+दना+ना दन—व्यु० ?) दन का अर्थ वेग से किसी काम को करना। दनदनाहट।

दपट-ना—स० (दप<दर्प+ट)। दपट का रूपान्तर डपट।

दफना-ना—स० ('दफ़न' फा० से क्रिया)।

दब-ना—अ० (दब<दुर्बल)–दबवाना । दबाना । दबैल=दब+ऐल ।

दबक-ना—अ० (दब+क, दब<दुर्बल के ल का लोप कर निकला जान पड़ता है) । अन्य रूप–दबक–दुब<दुर्ब (ल) ।

दबोच-ना—स० (दबोच=दब+ओच ।

दर-ना, दलना—स० (दरना<दरणं । दलना<दलनं । √दृ विदारणे ।

दरक-ना—अ० (दर+क) । क्रि० स० दरकाना । दरार–दर+आर ।

दरदरा-ना—स० (दर की द्विरुक्ति से)=मोटा पीसना ।

दरसाना, दरशाना—स० (दरस<दर्श√दृश् प्रेक्षणे) ।

दरेर-ना—स० (दर+एर) ।

दलमल-ना—स० (दल+मल) दलना+मलना के योग से ।

दह-ना—अ० (दह–√दह्भ्रीकरणे) । क्रि० स० दाहना ।

दहना का अर्थ किसी किसी क्षेत्र में बहना भी होता है । दहाना–बहा दिया । 'दह गया है' (निराला) ।

दहक-ना—अ० (दहक–दह+क) । क्रि० स० दहकाना ।

दहल-ना—अ० (दह+ल) । दाह को देखकर डरना और काँप उठना स्वाभाविक है ।

दहाड़-ना—स० (दहाड़–दह+आड़ ।)

दहाड़ना=घोर शब्द करना । कदाचित् दाह देखकर चिल्लाकर पुकारने से ही 'दहाड़' कहलाने लगा । दाह-जन्य घोर शब्द इसका मूल अर्थ जान पड़ता है । अन्य रूप–दीखना । प्रे० दिखाना, दिखवाना और 'दिख' हुआ है ।

दिख-ना—अ० (दृश् का विकास प्रा० दिस्सइ, दीसइ–हि० दीसे में दिखाई पड़ता है । फिर ख कहाँ से आया ? जान पड़ता है कि यह दिक् से सम्बद्ध है । क का ख में रूपान्तर होकर दिख हो सकता है । अन्यरूप–दीखना । गुण रूप–देखना क्रि० स० प्रे० दिखाना । दिखवाना । दिखलाना । दिखलवाना । दिखाई–संज्ञा (मुँह दिखाई) ।

दिखाऊ । दिखावा । दिखाव, दिखौआ । (ग्राम्य) ।

दिप-ना—अ० (दिप√दीप् दीप्तौ) ।

दुख-ना—अ० (दुख<दुःख से नामधातु। क्रि० स० दुखाना। प्रे० दुखवाना।

दुबला-ना—अ० (दुबला<दुर्बल से नामधातु)।

दुरदुरा-ना—स० (दुर् की द्विरुक्ति-दुर<दूर।

दुरा-ना—स० ('दूर' से)। दुराना का अर्थ छिपाना होता है। दूर होने से कोई वस्तु छिप जाती है।

दुलार-ना—स० (दुलार, दुलाल, दुलाड़—<दुर्ललनं।)
दुलराना। दुलरुआ। दुलारा।

दुह-ना—स० (√दुह् प्रपूरणे) दुहना, लाभ उठाना। दोहनं दुहाना। प्रे० दुहवाना।
दुहाई (दुहने की मजदूरी) दुहवाई। दोहनी। दुहावनी।

दृढ़ा-ना—स० (दृढ़ से नामधातु)।

दे-ना—स० (दे<√दा दाने।) दा में ना जुड़ता तो दाना होता जो भ्रम पैदा करता है। दाना>धाना से तद्भव होता है। अतः हिन्दी मे दा का दे कर दिया गया।

दोहरा-ना—स० (दो+हरा) से नामधातु। अन्य रूप-दुहराना।
दोहर=एक वस्त्र (दो परतों की चादर)।

दौड़-ना—अ० (दौड़>द्रु गतौ। द्रु के रकार का लोप कर दु, पुनः दु का वृद्धि रूप दौ+ड प्रत्यय=दौड। विकल्प से र भी। दौर। दौर से 'दौरा'। दौरा अरबी में भी है। श० सा० में दौड़ की धोरण से निकला माना गया है।
दौड़ाना। दौड़वाना।

ध

धँस-ना—अ० (धँस>ध्वंस या √दंश-दंशनं (श० सा०) गड़ना से) क्रि० स० धाँसना। धँसाना। प्रे० धँसवाना। धँसान। धँसाव।

धकधका-ना—अ० (धक की आवृत्ति से) धक-मयादि हृदगति का शब्द। धक—अनुकारी शब्द। धकधकी। अन्य रूप—धुकधुकाना।

धकपका-ना—अ० (धक+पक)।

धकिया-ना—स० (धक्का से नामधातु।)

धकेल-ना—स० (धकेल=धक+एल)। धकेल का रूपान्तर ढकेल। धक से धक्कमधक्का। धक्कम–धक्+क+म।

धड़क-ना—अ० (धड़+क)। क्रि० स० धड़काना। धड़का। धड़ाका। धक मे ही ड़ का मध्यागम हुआ जान पड़ता है। धक्–धक् का शब्द। धड का अर्थ गति भी होता है। इस अर्थ में धड से धड़ाधड; धड़ाम आदि। गत्यर्थक शब्द बनते हैं।

धुतकार-ना—स० (धुत भाव व्यंजक अव्यय। <धुत भी। धुतकार का रूपान्तर दुतकार भी जान पड़ता है।

धधक-ना—अ० (धधक दहक का भी रूपान्तर हो सकता है। ध=द+ह। धक के पूर्व ध की द्विरुक्ति से धधक। प्रे० धधकाना।

धमक-ना—अ० (धम गिरने का शब्द। धमक=धम+क)। क्रि० स० धमकाना। धमधमा-ना। धमाका से धमाधम। धमा+चौकड़ी=धमा 'चौकड़ी'। धमार–धम+आर (उछलकूद–उपद्रव)।

धर-ना—स० (<धरणं)। प्रे० धराना, धरवाना। धरोहर।

धुन-ना—स० (धुन<ध्वनि)। नामधातु। √धुकम्पने। धुनोति। धुनाना। धुनवाना। धुनकी धुनिया। धुन+क=धुनक। धुनकना भी।

धुल-ना—क्रि० अ०। (धुल<'धवल' से)। प्रे० धुलाना। धुलवाना। धुलाई।

धो-ना—क्रि० स० (धो–√धाव् गतिशुद्धयोः। धाव् से धो। धोती> धौती। प्रे० धोवाना। धोवन। एकारान्त–ओकारान्त धातुओं में य अथवा ओ का आगम बोलचाल में होता है। धोना–धोवना। धोव से धोव–धोब से धोबी।

धौंक-ना—क्रि० स० (धौं<धूम+क)। धौंकन में धूम निकलता ही। धौं से धुंआ भी।

धौंस-ना—क्रि० स० (धौंस<ध्वंस ?)। अधिकतर धौंस 'जमाना' का प्रयोग होता है। धौंस–धमस से। धौंस=धाक, दबव।

न

नकार-ना—क्रि० स० ('नकार' से नामधातु) नकार–निषेधार्थक अव्यय । संस्कृत में इसका प्रयोग भी मिलता है—

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्मांगराजाय महेश्वराय । नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै नकाराया नमः शिवाय । न कार का विपरीतार्थक सकार<स्वीकार चलता है । न कार की तुलना इनकार से कीजिये ।

नकिया-ना—क्रि० स० ('नाक' से नामधातु) ।

नखिया-ना—क्रि० स० (नख से नामधातु) √नख् ।

नच-ना—क्रि० अ० (नचना–नच<नृत्य । √नृत् से नृत्य ।) । नाचना का अधिक प्रयोग होता है । प्रे० नचाना । नचवाना । नचनिया । नचवैया । नचीला ।

नट-ना—क्रि० अ० (नट√नट् नाट्ये । √नट् भाषाया ।)=अभिनय करना । नहीं का भाव । व्यक्त करना ।

नध-ना—क्रि० अ० (नध√नद्ध) । नधना=जुतना ।

नम-ना—क्रि० स० नाधना । प्रे० नधवाना । क्रि० स० (√नम झुकना ।) क्रि० स० नमाना (नवाना) ।

नरमा-ना—क्रि० अ० विक० नर्माना । (नरम से नामधातु) । नर्म सं० नम्र से भी सम्बन्धित है । नर्म फा० से नरमाना ।

नस-ना—क्रि० अ० (नस√नश् अदर्शने ।) क्रि० अ० नसाना । क्रि० स० नासना । प्रे० नसवाना ।

प्रयोग—'हँसी तो नसी' बहुत नसाओ मत ।

नहा-ना—क्रि० अ० (नहा<√स्ना के वर्णविपर्यय से) प्रे० नहवाना, नहलाना । नहान<स्नान

नथ-ना—क्रि० अ० (नथ<नद्ध से√नह् बन्धने) । क्रि० स० नाथना=नथ में छेद करके जोड़ना । नथ<नस्त=नाक का अगला भाग । नथुना=नथ+उना ।

नप-ना—क्रि० अ० (नाप से अक० । नाप–माप का रूपान्तर नाप+ई (=पैमाइश)–नापना । नपवाना ।

निकल-ना—क्रि० अ० (निकालना से अक०) निकालना<निष्कासन प्रा० निक्कालइ। <णिक्कारइ अप० प्रे० निकलवाना। जनपदी रूप–निकारना।

निकस-ना—क्रि० अ० (निकासना<निष्कासनं)। निकास। निकासी।

निक्रिया-ना—क्रि० स० (निक<नख से निकला जान पड़ता है। नामधातु)। निकियाना=नख से नोचकर छिलका अलग करना।

निखर-ना—क्रि० अ० (<निक्षरण।) क्रि० स० निखारना। प्रे० निखरवाना। निखार।

निखोट-ना—क्रि० स० (नख+ओट=खोट–निखोट। खोटना का भी नख से तोड़ने के अर्थ में प्रयोग होता है। अतः निखोट=नि उपसर्गपूर्वक खोट।

निगल-ना—क्रि० स० (<निगरण)। प्रे० निगलवाना।

निचुड़-ना—क्रि० अ० (चुड़<च्युत)। नि उपसर्ग+चुड़। क्रि० स० निचोड़ना। (चुड़ रूप से) प्रे० निचुड़वाना।

निथर-ना—क्रि० अ० नि+थिर<स्थिर। क्रि० स०–निथारना। निथरना–पानी का स्थिर (थिरना) हो जाना।

निबट-ना—क्रि० अ० (<निवर्तन। <निवृत्त)। निबटाना। निबटवाना। निबटाव। निबटारा। निबटेरा।

निबह-ना—क्रि० अ० (<निर्वहन) निर–√वह् क्रि० स० निबाहना। निबाह<निर्वाह।

निबट-ना—क्रि० अ० (<निर+वृ)। √वृर वर्तने।

निभ-ना—क्रि० अ० (निभ<निर्वह, वह के प्रभाव से भ)। क्रि० स० निभाना।

निपटा-ना—क्रि० अ० (निपर<निकट)।

निरख-ना—क्रि० स० (निरख–निरीक्षणं)।

निरा-ना—क्रि० अ० (<निराकरण। निं+कृ ?)=निकाना (फसल के आसपास की घास साफ करना।

निहार-ना—क्रि० स० (<निभालनं)।

निहुर-ना—क्रि० अ० (निहुर व्यु० ?) कदाचित् निहोरा से, क्योंकि निहोरा करने में शरीर को झुकाना पड़ता है। क्रि० स० निहुराना।

नोच-ना—स० (नोच<लचन)। क्रि० अ० नुचाना। प्रे० नुचाना। नुचवाना। नोचवाना।

न्योत-ना—स० (न्योता—न्योत-निवेद ?) प्रे० न्योतवाना। न्योतहरी= न्योता में आये लोग।

प

पक-ना—अ० (पक<पक्व। √पच् पाके।)

क्रि० स० पकाना। प्रे० पकवाना। पक्का<पक्व। पकवान। पकावन। पकाई।

पकड़-ना—स० (पकड—<प्र+कृष्ट प्रा० पक्कडइ। प्रे० पकड़ाना। पकड़वाना। पकड़ाई।

पखार-ना—स० (परवारना<प्रक्षालन। पखार<प्रक्षार।

पग-ना—अ० (पग पक से ही सम्बन्धित)। वर्गीय प्रथम का तृतीय में रूपान्तर। क्रि० स० पागना। पाग<पाक।

पागल—पाग+ल (अपने ही रस (मस्ती) में डूबा हुआ।

पगला-ना—अ० ('पागल' से नामधातु)। यह सकर्मक भी होता है। अक० वह पगलाता है। सक० तुम मुझे पगला दोगे।

पच-ना—अ० (पच<पच्। क्रि० स० पचाना। प्रे० पचवाना। पचौनी।

पछा-ना—अ० (छाप के वर्ण विपर्यय से पाछ)। क्रि० अ० पाछना। प्रे० पछाना। पछवाना। पाछ—चेचक का टीका लेने पर उठनेवाला चिह्न।

पछाड़-ना—स० ('पछाड' से) पछ<पश्च।

पछार-ना—स० (<प्रक्षाल—न)।

पछिया-ना, पिछियाना—स० पीछे<पश्च से नामधातु।

पटक-ना—स० (पट<पट्ट+क=पटक=पट करना)।

पट-ना—अ० ('पट' से। पट<पट्ट। प्रे० पटाना (पानी) प्रे० पटवान। पटाव। पटवन। पटरा। पटिया। पटरी। पटापट। पटाका।

पटौतन (ऋणपरिशोध) । पटना–बराबर होना, समभाव होना, आदि ।

पटपटा-ना—अ० (विशेष अर्थ में–भूख-प्यास से कष्ट अर्थ में इसकी व्युत्पत्ति अज्ञात ।)

पठा-ना—स० (पठ<प्रस्थ । प्रस्थानं । प्रे० पठवाना । पठावनी (पठाने की मजदूरी) ।

पड़ताल-ना—स० (पड़ताल=जाँच इस अर्थ में इसकी व्यु० अज्ञात । <पट्टताल ?)

पड़-ना—अ० (<पतन । पड़√पत् । पड़ाव ।

पढ़-ना—अ० (<पठन । √पठ्) । क्रि० स० पढ़ाना । प्रे० पढ़वाना । पढ़ाई । पढ़वाई । पढ़वैया ।

पधार-ना—अ० (पधार<पदार्पन=पदार्पणं । केवल पदार से पधार अथवा प (पद का मात्र 'प'+धारण ।)

पनप-ना—अ० (पन<पर्णं । पनप–पन+प ।

पनिया-ना—स० (पानी से नामधातु) ।

पपड़िया-ना—स० (पपड़ी<पर्पटी से नामधातु) ।

परच-ना, परक-ना (भोजपुरी)—(<परिचय से नामधातु) ।
च् का क् प्रायः होता है–परच् से परक । जैसे–
वाच् से वाक् ।

परख-ना—स० (<परीक्षणं । परख<परीक्षा ।)
प्रे० परखाना । परखवाना । परखैया । पारखी ।

परा-ना—अ० (<पलायन) । परा<पला ।

पलट-ना, पलोटना भी—स० (<प्रलोटनं) । प्रे० पलटवाना । पलटा ।

पल-ना—अ० (<पलनं) क्रि० स० पालना<पालनं । पालना, पलना संज्ञा ।

पसर-ना—अ० (<प्रसर । प्रसरणं । √प्र+सृ । क्रि० स० पसारना <प्रसारणं ।

पसा-ना—स० (पसाना<प्रसावणं । प्र+√स्रु बहना) ।

पहन-ना, पहरना—स० (पहन<परिधा-न धा का ह । परि+धा के वर्ण-विपर्यय से पहिर, पहिन ?) इसके वैकल्पिक रूप हैं पहिनना, पहिरना ।

पहराई । पहनाई । पहनावा । पहिरावा ।

पहुँच-ना—अ० (पहुँच<प्र-भू । प्रभवति<पहुच्चइ । प्र० पहुँचाना । पहुँचवाना । पहुँचा (कोई वस्तु हाथ में पहुँचती है—अतः उस अंग को पहुँचा कहा जाने लगा ।)

पाथ-ना—स० (<प्रथनं) । प्रयोग—गोइठा पाथना ।

पाद-ना—अ० (<पर्दनं √पर्द कुत्सिते शब्दे) ।

पार-ना—स० (<पारणं ।) खरी 'पारना' तिलौरी 'पारना' आदि में पारना भी क्या पारणं से ही निकला है ? यह विचारणीय है ।

पिघल-ना—अ० (पिघल<प्र+गल-नं । प्र+गल से पिघल) । प्रे० पिघलाना । पिघलवाना ।

पिच-ना—अ० (पिच<पिच्च ।) पिच=दवाना । पिचाना । वर्ण विपर्यय से चिपाना भी ।

पिचक-ना—अ० पिचक<पिच्च+क्र—प्रा० पिच्चक्कइ ।

पिचक=फूली चीज का दबना । पिच=दबना । पिचका-ना ।

पिछड़-ना—अ० (पिछ<पिच्छ, <पश्च भी पिछड़ का अन्य रूप पछड़ (पछ+ड़) पिछड़ना । पिछाड़ना । पिछाड़ो । पिछवाड़ा ।

पिट-ना—अ० (पिट√पिट् हिंसासंक्लेशनयो: । प्रे० पिटाना । पिटवाना । क्रि० स० पीटना । (पीडनं से भी हो सकता है ।) पिटाई । पिटवाई ।

पियरा-ना—अ० (पीयर-पीय+र) । पीय<पीत, पीयर या पियर से नामधातु । पियरी । पियरई ।

पिरा-ना—अ० (पीर<पीड़ा से नामधातु) ।

पिल-ना—अ० (पेलना से अक० । पेलना<प्रेरणा । क्रि० स० पिलाना । (गोली) प्रे० पिलवाना ।

पिस-ना—अ० (पिस√पिष् संचूर्णने ।) पिसाना । पिसवाना । पिसवाई । पिसावट ।

पीज-ना—अ० (<पिजनं । पिजं=रुई ।)

पी-ना—अ० (√पा पाने)। जान पड़ता है कि हिन्दी में पा-ना (√प्राप्) बन जाने के कारण √पा पाने के लिये 'पी' (धातु) बना—पा से भेद करने के लिये। जल के अर्थ स० में पीवा भी है।

पुकार-ना—स० (प्रकार<स्फूत्कार ? प्रा० फुक्कारेइ, पुक्कारेइ (हार्नली) प्रकुश् (श० सा०)।

पुचकार-ना—स० (पुच अनु० शब्द) पुच+कार।

पुलक-ना—अ० (पुलक से नामधातु)।

पूछ-ना—स० (पूछ<पृच्छ)। पुछारी। (भोजपुरी में मालपुरसी के अर्थ मे)। 'पूछ'पाछ। 'पूछा'पाछी।

पूज-ना—स० (√पूज् पूजायाम्)। क्रि० अ० पुजाना। प्रे० पुजवाना। पुजाई। पुजवाई। पुजापा। पुजारी। अन्य रूप पुजाड़ी, पुजेड़ी।

पूर-ना—अ० (पूर√पृ। पूरणं)।

पेन्हा-ना—अ० (पेन्हा—पयः√स्नु से ? पयः स्रवणं)।

पेर-ना—स० (<प्रेरण)।

पेल-ना—स० (<पेलनं √पिल्)।

पैठ-ना—अ० (पैठ<प्रविष्ट)।

पैर-ना—अ० (<प्लवनं√प्लु गतौ। वैक० रूप—पौरना, पौंड़ना भी (भोजपुरी)।

पो-ना—स० (√प्याप् वृद्धौ। रोटी 'पोना' (बढ़ना, बढ़ाकर बनाना)।

पौढ़-ना—अ० ('पौढ़' व्यु० ? अनिश्चित। सं० प्रोढाह का अर्थ विवाह है। विवाह में शयन आवश्यक है। क्या पौढना मे पौढ़ का प्रोढाह से सम्बन्ध है ?)

फँस-ना—अ० (फाँस<पाश से नामधातु)। क्रि० स० फँसाना। प्रे० फँसवाना। फँसिहारा। फाँस—फाँसी। फँसान।

फटक-ना—स० (फट<स्फट+कृ। स्फटनं। प्रा० फट्टकइ। प्रे० फटकाना। फटकवाना। फटकार।

फटकार-ना—स० (फटकार (फटक+आर) से नाम धातु।

फट-ना—अ० (<स्फट् विकसने)। फटहा=फट+हा।

फटफटा-ना—अ० (फट की द्विरुक्ति। नामधातु।)

फड़क-ना, फरक-ना—अ० (फट से फड़ (ट का ड)+क। फरक (फर+क)-स्फट् संचलने।

फड़-फड़ा-ना—अ० (फड़ की द्विरुक्ति से। नामधातु।)

फरिया-ना—स० (<फलीकरण)=निर्णय करना।

फलक-ना—अ० (फड़कना का ही रूपान्तर।) र का ड़ और ल में भी परिवर्तन होता है।

फहर-ना—अ० (फहर<प्रसर। प्रसरणं।) क्रि० स० फहराना।

फाँक-ना—स० (फाँक व्यु० ?) प्रे० फँकाना, फँकवाना। फँकी।

फाँद-ना—अ० (<स्पन्दनं)। प्रे० फँदाना। फँदवाना।

फाड़-ना—स० (फाड़ना<स्फारनं। वि-पाटनं। पाटनं से फाड़ना। विपाटनात् निरुक्त ६/१६।

फुदक-ना—अ० (फुद—√स्पन्द् किञ्चित् चलने।)

फुफकार-ना—अ० (<फुत्कार से नामधातु। फुंकार)।

फुरफुरा-ना—अ० ('फुरफुर' √स्फुट (अनु० शब्द)। फुरफुरी।

फुसफुसा-ना—स० (कदाचित् फुफ्फुस से सम्बन्धित) फुस=धीमा स्वर। फुसफुसाहट।

फुसला-ना—स० (फुस+ल+आना।)=धीरे-धीरे मीठी बातें कर किसी को अनुकूल करना।

फूँक-ना—स० (फूँक=फूँ+क। फूँ ध्वन्यात्मक शब्द)। प्रे० फुँकाना, फुँकवाना। फुँकना (फूँकने का यंत्र, गुब्बारा)। फूँका: (बाँस की नली)।

फूट-ना—अ० (<स्फुटनं।) प्रे० फुड़ाना, फुड़वाना।

फूल-ना—अ० (फुल<फुल्ल)। फुलाना। फुलवाना।

फेंक-ना—स० (<प्रेङ्खोल् आन्दोलने) प्रेङ्ख से फेंक। प्रे० फेंकवाना। फेंकैत=फेंक+ऐत।

फेंट-ना—स० (फेंट 'पिष्ट' से ?) प्रे० फेंटाना। फेंटा।

फेना-ना—अ० (फेन से नामधातु)।

फेर-ना—अ० (फिर से गुण रूप 'फेर' प्रे० फेरवाना।) फेरा।

फैल-ना—अ० (फैल—<स्फाल—स्फालन)। स० फैलाना। प्रे० वाना। फैलाव।

फोड़-ना—स० (फ ड़<स्फोट<√स्फुट्) । फोड़वाना ।

फोड़ा-पु० फुड़िया, फोड़िया स्त्री० ।

ब

बँट-ना—अ० (<वटनं) बाँटना का अक० रूप । प्रे० बँटाना, बटवाना । बँटाई । बँटवारा ।

बँध-ना—अ० (बाँधना का अक० रूप । <बन्धनं । बँधाना, बँधवाना । बाँध । बँधुआ (कैदी) । बंधेज (बध+एज) । बाँधनू (रँगने मे काम आनेवाला विशेष प्रकार का वस्त्र) ।

बकोट-ना—स० (व्यु० ?)

बखान-ना—स० (<व्याख्यान से नामधातु) ।

बखिया-ना—स० (बखिया से नामधातु । बखिया फा०) ।

बख्श-ना—स० (बख्श से नामधातु । बख्श–फा०) ।

बगलिया-ना—स० (बगल से नामधातु । बगल फा०) ।

बघार-ना—स० (बघार व्यु० ?)

बच-ना—अ० (<वचन) । स० बचाना । प्रे० बचवाना । बचाव । बचत ।

बज-ना—अ० (बज<वाद्य√वद्) । स० बजाना । प्रे० बजवाना । बजवाई । बजवैया ।

बझ-ना—अ० (बझ<बद्ध) । स० बझाना । बझाव ।

बट-ना—अ० (<वर्तनं√वृत्) ।

बटोर-ना—स० (=बट+ओर । √वृत् । अ० बटुराना (=कई वस्तुओं का एकत्र होना ।)

बड़बड़ा-ना—अ० (बड़√वद्, बड़ की द्विरुक्ति से ।) बड़बड़िया ।

बढ़-ना—अ० (बढ़√वृध् वृद्धो । वर्धनं) । स० बढ़ाना । प्रे० बढ़वाना । बढ़ाव । बढ़ावा । बढ़िया । बढ़ोतरी (बढ़+उत्तरी) ।

बता-ना—स० (बत–बात<वार्ता) । बतलाना । बतियाना ।

बदल-ना—अ० (बदल–अरबी ।) बदलाना । प्रे० बदलवाना । बदला (संज्ञा) बदल–(अदल–बदल) ।

बन-ना—म० (बनना<वर्णनं)। स० बनाना। प्रे० बनवाना। बनावट। बनावन।

बर-ना—स० (<वरणं)।

बरगला-ना—स० (बरगलाना फा०)।

बरज-ना—स० (वर्जनं)।

बरत-ना—स० (वर्तनं)। बरताव।

बरधा-ना, बरदाना—स० (बरध<बलद)=गो आदि का नरपशु (बरधा) के साथ जोड़ा खाना।

बरस-ना—म० (बरस<वृष्-वर्षण)। बरसात।

बरा-ना—स० (<वारणं)।

बर्रा-ना—म० (बरबर-बड़बड़-बरबर से ही बर्राना)।

बलक-ना—म० (बल<ज्वल+क)। बलकना=उबलना। जोश में आना। स० बलकाना।

बल-ना—म० (बल<ज्वलने शतपथ २/६/२११। बलना=जलना। श्रीभगवद्दत्त जी यङ्लुक् मे 'बल' ज्वलने का रूप 'बल्वलीति' बताते हैं। क्या इससे 'बल्व' अंग्रेज़ी का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है?

बस-ना—म० (बस√वस्)। स० बसाना। बसेरा=बस+एरा। बस्ती।

बहक-ना—म० (बह+क)। स० बहकाना। बहकावट।

बाँच-ना—स० (<वाचनं)।

बास-ना—स० (<वासनं)।

बाह-ना—स० (<वाहनं ?)

बिंध-ना—म० (बिंध<विद्ध) बिंधाना। स० वेधना (वेधनं)।

बिक-ना—म० (बिक<विक्रय√वि+√क्री द्रव्यविनिमये।) बिकाना। प्रे० बिकवाना। बिकाऊ। स० बेचना।

बिकस-ना—म० (<विकसनं)।

बिखर-ना—म० (<विकिर?) स० बिखराना। बिखेरना।

बिगड़-ना—म० (बिगड़<विकृत)। स० बिगाड़ना। बिगाड़<विकार। बिगड़ैल।

बिचक-ना—अ० (वि+चक ?) प्रे० बिचकाना ।

बिचर-ना—अ० (<विचरणं) ।

बिचल-ना—अ० (<विचलनं) ।

बिचार-ना—अ० (<विचारणं) ।

बिछ-ना—अ० (बिछ–वि√स्तृ आस्तरणे) । स० बिछाना । प्रे० बिछवाना । बिछौना—बिछ+औना ।

बिछुड़-ना—अ० (वि+छुड़) ।

बिठा-ना, बैठा-ना—स० (बिठ<विष्ठ ।) विष्ठ<वइट्ठ∠बैठ । बिठ का रूपान्तर बैठ ।

बिन-ना, बुन-ना—स० (बिनना, बुनना<वयनं) । स० बीनना । प्रे० बिनवाना । बिनाई । बिनावट । बुनवाना । बुनना । बुनाना । बुनवाना । बुनाई । बुनावट । चुनना अर्थ में बिनना<विनयनं से ।

बिराज-ना—अ० (<विराजन । विराजते ।)

बिरा-ना—स० (∠विरूपण)=मुँह विकृत करना ।

बिलख-ना—अ० (वि+लक्ष ?) प्रे० बिलखाना ।

बिलगा-ना—स० (वि+लग से) । बिलगाव ।

बिलबिला-ना—अ० (कदाचित् विलाप् के प् के लोप से । बिल्लाना भी एक क्रिया है जो चिल्लाना के साथ प्रयुक्त होता है ।

बिलम-ना—अ० (बिलम∠विलम्ब) । स० बिलमाना ।

बिला-ना—अ० (∠विलय से) । बिलवाना=खो देना) ।

बिलो-ना—स० (∠विलोड़नं से) ।

बिसर-ना—अ० (∠विस्मरण । √वि+स्मृ) । क्रि० स० बिसराना ।

बिसूर-ना—अ० (∠विसूरणं) ।

बिहँस-ना—अ० (∠विहसनं) ।

बिहर-ना—अ० (∠विहरण) ।

बीत-ना—अ० (∠व्यतीत का सरलीकरण) । बिताना । बितवाना ।

बुझ-ना—अ० (बुझ∠बुध् से ?) दिया बढ़ाना का अर्थ बुझाना होता है । बुध्—बढ़ाना ।

ब्योंत-ना—स० (ब्योंत–व्यु० ?)=शरीर के माप के अनुसार कपड़ा काटना। कदाचित् इसका सम्बन्ध वि+आयत से हो। प्रे० ब्योंताना।

भ

भँज-ना—अ० (√भञ्ज् आमर्दने) तोड़ना।
क्रि० स० भँजाना-बड़े सिक्के को तोडकर छोटे सिक्कों के रूप में बदलना। प्रे० भँजवाना। सं० भजित।

भँस-ना—अ० (<भ्रश √भृश् अधःपतने।) क्रि० स० भँसाना। भँसान या भसान–संज्ञा।

भकभका-ना—अ० (भक आग के भभकने का शब्द।) भक से आदि वर्ण की द्विरुक्ति से 'भभक'। भक अनु० शब्द।

भकुआ-ना—अ० (भक से)। अचानक आग के भभकने से चकित होना या चकपकाना स्वाभाविक है अतः भकुआना का चकपकाना, घबराना अर्थ होता है। भकुआ–मूर्ख।

भकोस-ना—अ० (√भक्ष् अदने)। खाना।

भग-ना—अ० (भागना से भगना। भाग–√भाज् पृथक्करणे)। पृथक् करने पर कोई पदार्थ दूर हो जाता है। अतः भागना से दूर जाना, फिर त्वरा से दूर जाना अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है।

भचक-ना—अ० (भचक–√भ्रंश्) अवसंसने से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। भच+क।

भज-ना—अ० (<भजन। √भज् सेवायां)।

भटक-ना—अ० (भटक–भट<भ्रान्त ? भट+क=भ्रांत गति। यह भटक के तुक पर गढ़ा जान पड़ता है।
क्रि० स० भटकाना। भटकाव।

भड़क-ना—अ० भड़कना का अर्थ उत्तेजित होना होता है। भड़क का अर्थ चमक भी–तड़क–'भड़क' में। सं० में √भ्राज् √भास् धातुयें दीप्ति के अर्थ में आती हैं। भा से भड़ (भर) और फिर भड़+क=भड़क।

भड़भड़ा-ना—स० (भड़ अनु० शब्द।) 'भड़-भड़'–द्वार पर आघात से उत्पन्न शब्द। भड़भड़िया। भड़भड़ाहट।

भन-ना—स० (√भण् शब्दे। 'भणिति' भणिता आदि शब्द देखिये।)

भनक-ना—अ० (भन+क)।

भभक-ना—अ० (देखिये भक-ना)।

भरभरा-ना—अ० ('भरभर' से) भरभर अनु० शब्द।

भर्रा-ना—अ० (भरभराना का रूपान्तर)। भहराना भी 'भर' में ह के मध्यागम से।

भाँज-ना—स० (भाँज–भ्राज् दीप्तौ चमकाना से।) प्रयोग—तलवार भाँजना, गदा भाँजना आदि।

भास-ना—अ० (√भस्–दीप्तौ। √भाष् दीप्तौ। आभास, भास् आदि शब्द देखिये।)=आभास होना। चमकना।

भिगाना, भिगो-ना—स० इसके अनुनासिक युक्त रूप भी प्रचलित हैं। भिंगाना, भिंगोना। भिजाना भी भिगाना के स्थान पर। (<अभ्यंज)।

भिड़-ना—अ० (<भिद् से। अभिरण=युद्ध से ध० सा०। क्रि० स० भिड़ाना। भिड़न्त। भिड़ान। भीड़ का भी भिड़ से सम्बन्ध हो सकता है। भीड़=जहाँ बहुत से लोग परस्पर भिड़ते हों।

भिनभिना-ना, भिन्नाना—अ० (भिन से द्विरुक्ति द्वारा।) भिन=सिर चकराना।

भुगत-ना—अ० (<भुक्ति से)। क्रि० स० भुगतान।

भुन-ना, भुँजना—अ० (√भृज् भुर्जने)। क्रि० स० भुनाना। भुनवाना। भुँजाना, भुँजवाना। क्रि० स० भूँजना। भूँजना से 'भूँजा' संज्ञा।

भुरभुरा-ना—अ० (भूरा=चूरा, चीनी आदि छिड़कना। कदाचित भरभराना से सम्बन्धित।

भूँक-ना—अ० (भूँ+क=भूँक। कुत्ते का शब्द 'भों-भों'। भों से भूँ। अनु० शब्द।) भुँकाना। भुँकवाना।

भूल-ना—अ० (भुल–विह्वल? ध० सा०। अथवा √लुभ् विमोहने से वर्ण विपर्यय होकर।) लुभाने पर भुलाना सम्भव है।

भेंट-ना—स० (भेंट ब्यु० ?) क्रि० अ० भेंटाना।

भेज-ना—स० (<व्रजनं ?) प्रे० भेजवाना।

भेद-ना—स० (√भिद् विदारणे। भेदनं। वेधनं से भी हो सकता है—व का भ होकर)।

भोंक-ना—स० (√भष् (भोंकना)-काले)।

भोग-ना—स० (<भोग से नामधातु)।

म

मँडरा-ना, मँडलाना—अ० (<मंडल से)।

मच-ना—अ० (√मच् धारणोच्छ्रायपूजनेषु) पकड़ना, ऊँचा होना, जाना, सजाना, चमकना से इसका सम्बन्ध हो सकता है।
प्रयोग—शोर मचा। क्रि० स० मचाना।

मचल-ना—अ० (मचल—मत+चल से ?)

मटक-ना—अ० (√मद् तृप्तियोगे (प्रसन्न करना)-कार्य और √मण्ड् सजाना के प्रभाव से 'मट' शब्द निकल सकता है।
मटकना का अर्थ होता है लचककर नखरे से चलना।
मटकाना। 'मटकी' (मारना)।

मढ़-ना—स० (मढ़ √मण्ड्। मढना <मण्डनं)। प्रे० मढ़ाना, मढ़वाना। मढ़ाई। मढ़वाई।

मथ-ना—स० (<मथन √मन्थ् विलोडने)। प्रे० मथाना। मथवाना।
मथनी। मथानी। मथाई। मट्ठा—(थ का ठ)।

मर-ना—अ० (मर √मृ मरणे। मरणं।) क्रि० स० मारना <मारणं।
प्रे० मराना, मरवाना। मरनी।

मरोड़-ना, मरोरना—अ० और क्रि० स० मोड़ का ही रूपान्तर—मरोड़ जान पड़ता है। मरोड़ा।

मल-ना—स० (√मृजूँ हर्षणये से भी सम्बन्ध जान पड़ता है। 'मल' से क्रिया—मल छुड़ाना, मर्दन द्वारा।) प्रे० मलाना। मलवान।
मलाई। मलवाई।

महक-ना—अ० (मह+क)। महक से नामधातु। मह<मधु से ?

मसक-ना—अ० (मसक-ना व्यु० ?) क्रि० स० मसकाना। =कपड़े आदि का खिचाव से दबकर फट जाना।

मसोस-ना—अ० (मसोस–महूस का रूपान्तर ?)

मस्ता-ना—अ० (मस्त<मत्त) । मस्ती ।

मांज-ना—स० (<मार्जनं √मृज् शुद्धौ) । मंजाना । मंजवाना ।

मांड़-ना—स० (<मर्दनं √मृद्क्षोदे) । मंड़ाना । मंड़वाना ।

मान-ना—स० <मान्य से । √म्ना ।

मिट-ना—अ० (मिट<मृत्ति)=मिट्टी में मिलना या नष्ट होना ।

मिल-ना—अ० (<मिलनं) । क्रि० स० मिटाना । प्रे० मिटवाना ।

मींज-ना—स० (मींज<मिह् स्नेहने सेचने च) ।

मुकर-ना—अ० (मुकर<मा कृ ? मा=मत, नहीं) ।

मुकिया-ना—अ० (मुक्की से नामधातु । मुक्की <मुष्टिका) ।

मुस्करा-ना, मुसकुरा-ना—अ० (मुसकान से 'मुसकान' व्यु० ?)

मूँड़-ना—स० (√मुण्डनं) मुँड़ाना, मुँड़वाना । मूँड़न ।

मूँद-ना—स० (मुद्रणं) मुद्रित । क्रि० अ० मुँदना । मुँदाना । मुँदवाना ।

मूस-ना—स० (√मूषस्तेय) ।

मोटा-ना—अ० ('मोटा' से नामधातु ।)

मोला-ना—अ० (मोल से नामधातु) ।

मोह-ना—स० (मोह से नामधातु) ।

र

रँग-ना—स० (रंग से नाम धातु √रञ्ज रागे ।) प्रे० रँगाना रंगवाना । रँग से रँगी (रँगीला), रंगीन, रांगोली ।

रँभा-ना—अ० (√रम्भ् रावे ।)

रख-ना—अ० (<रक्षणं । √रक्ष) प्रे० रखाना, रखवाना । रखवाला शब्दे । रखवाल, रखवार । रखाई । रखवाई । रखैल । रखेली । रखनी (भोजपुरी) ।

रगड़-ना—स० (रगवड़) प्रे० रगड़ाना, रगड़वाना । रगड़ा ।

रच-ना—स० (रचनं ।√ रच् प्रतिपदे ।)

रट-ना—स० (<रटनं । रट् परिभाषणे ।)

रपट-ना—अ० (रपट व्यु० ?)=फिसलना ।

रह-ना—अ० (रह<राज् श० सा०)

रहस-ना—अ० (<रभस से नामधातु ।)

रांध-ना—स० (<रंधनं=भोजन पकाना ।)

रिस-ना—अ० (रिसना=छन-छन कर बाहर निकलना इस अर्थ मे यह√रीस्रवणे (चूना बहना से निकलता है ।) रिस=रोष । इस अर्थ मे√रिष् हिंसायाम् से क्रि० अ० रिसाना, रिसियाना ।

रीझ-ना—(<रंजनं क्रि० स० रिझाना । प्रे० रिझवाना । रिझान । रिझावना ।

रुँध-ना—अ० (रुँध<रुध् आवरणे ।) क्रि० स० रुँधना ।

रुक-ना—अ० (रोक मे अकर्मक रूप । रोक<रोध) ?

रूठ-ना—अ० (रूठ<रुष्ट) क्रि० स० रुठाना । प्रे० रुठवाना ।

रूस-ना—अ० (रूसे<रोष√रुष्) रुसाना

रेंक-ना—अ० (रेंके√रेष् अव्यक्ते शब्दे ।)

रेंग-ना—अ० (<रिंगणं) प्रे० रेंगाना । रेंगवाना ।

रेत-ना—स० (रेती से नामधातु ।

रेल-ना—स० (रेलना=ठेलना । इस अर्थ में रेल की व्युत्पत्ति अज्ञात)

रो-ना—अ० (रो—√रुद् अथवा√रु शब्द से । रोदन का केवल आदि अक्षर से ।) रोप-ना—स० (<रोपणं।)

रौंद-ना—स० (<मर्दन ।)

ल

लँगड़ा-ना—अ० (लंगड़ से नामधातु । लंग+ड़ । लंग फा० और√लङ्ग लँगड़ाना ।)

लँबा-ना—स० (लबा<लम्ब से नामधातु ।)

लग-ना—अ० (√लग् सङ्गे । लगन ।)

लचक-ना—अ० (लच+क । लच अनु० श० सा० । क्रि० स० लचकाना । प्रे० लचकवाना । लचीला । लचकीला ।

लजा-ना—अ० (लाज से । लाज<लज्जा√लज् व्रीडने ।)

लटक-ना—अ० (लट+क । लट=केश का गुच्छा । लटकना=लट की तरह झूलना) प्रे० लटकाना । लटकवाना । लटकीला ।

लट-ना—अ० (लट<लड विलासे ।)

लटपटा-ना—अ० (√लट् बाल्ये√पट् गतौ ।) लट+पट ।

लड़खड़ा-ना—अ० (लड√लट्+खड़ा ।)

लड़-ना—स० (√लट् बाल्ये√लुट् प्रतिघाते । दोनों के प्रभाव से 'लड़' हुआ जान पड़ता है ।) लड्-लडयति-प्रा० लडइ-हानेली । प्रे० लड़ाना । लड़वाना । लड़ाई । लड़ाकू ।

लताड़-ना—स० (लात से लत+आड़ । लात व्यु० ?)

लतिया-ना—स० (लात से नाम धातु)

लथाड़-ना—स० (लताड़ का रूपान्तर लथेड़ना भी ।√लुप्-हिंसा-क्लेशनयोः से भी सम्भव है ।)

लद ना—अ० (लद√ऋध् समृद्ध होना, बढ़ना) क्रि० स० लादना । प्रे० लदवाना । लदाव । लद्दू । लद्दुआ (बैल) । लादी ।

लपक-ना—अ० (√लिप् से लप+क, लिप् से लिप्त ।)

लपट-ना, लिपटना—अ० (<लिप्ति से लिपट । लिपट से लपट ।) क्रि० स० लिपटना, लिपटवाना ।

लपलपा-ना—अ० (लप-लपाना व्यु० ?)=लम्बी कोमल वस्तु का= हिलना-डुलना । प्रयोग—लपलपाती तलवार ।

लरज-ना—अ० (लरज<लरजा फा० =कप ।)

ललक-ना— अ० (लल+क ।√लल् विलासे ।√लल् ईप्सायाम् ।)

ललकार-ना—स० (ललक+आर?√लल् ईप्सायाम् चाहना) ललकार= लड़ाई के लिए चाहना ।

ललच-ना—अ० (लालच से । लालस<लालसा । क्रि० स० ललचाना । लालची ।

लला-ना—अ० (<ललनं से ।)=लालायित होना ।

लस-ना—अ० (<लसनं ।√लस्श्लेषण क्रीडनयोः ।)

लसलसा-ना—अ० (√लस्‌श्लेषणे । लस की द्विरुक्ति से ।) लसलसाहट । लसलसी । लसीला । लसदार । लस्सी । लस=चिपकने का गुण ।

लहक-ना—अ०(लह√लस् । लहक=लह+क ।)
प्रयोग—आग लहकना ।

लहलहा-ना—अ० (लह√लस् । लह की द्विरुक्ति से लहलहाहट ।

लाँघ-ना—स० (<लंघन । प्रे० लँघाना । लँघवाना ।

ला—स० (ला√ला आदाने दानेच ।) प्रे० लिवाना ।

लिख-ना—स० (<लिखनं ।√लिख्) प्रे० लिखाना । लिखवाना । लिखवाई । लिखावट । लिखाई ।

लिप-ना—अ० (√लिप्) (लीपना) क्रि० स० लीपना । लिपाना । लिपवाना ।

लुक-ना—अ० (लुक्=लोप) व्याकरण का एक पारिभाषिक शब्द ।

लुट-ना—अ० (लुण्ठ स्तेये) लूटना का अक० रूप । क्रि० स० लुटाना । प्रे० लुटवाना । लुटेरा ।

लुँड़िया-ना—अ० (√लुट् लपेटना । लुड़े से नामधातु ।)

लुढ़क-ना—अ० (लुढ़√लुट् विलोडने । भूमि पर लोटना ।) लुढ़क के वर्ण विपर्यय से ढुलक । ढुलक से ढुलकना, ढुलकाना । प्रे० ढुलकवाना । लुढ़क से लुढ़काना , लुढ़कवाना ।

लुभा-ना, लोभाना—अ० (√लुभ । लोभ ।)

ले-ना—स० (√ला से ।)

लेप-ना—स० (<लेपने से ।)

लोक-ना—स० (इसका अर्थ है ऊपर से गिरती चीज को हाथों से पकड़ना । इस अर्थ में यह लोपन के निकट है ।)
प्रयोग—गेंद लोकना । क्रि० म०—लोकाना ।

लौट-ना—अ० (उलट के वर्ण विपर्यय से लउट=लौट ।
क्रि० स० लौटाना ।

सँजो-ना— स० (√सञ्ज्<संजय ।)

सँभाल-ना—अ० (<सम्भालनं ।)

सँवर-ना—अ० (सं√वृ) । क्रि० स० सँवारना ।

सकं-ना—अ० (√थक)

सकपका-ना—अ० (√सक+पक । सक<शंक) अचरज में पड़ना । शंका-डर का भाव भी निहित है ।

सकसका-ना—अ० (सक<शंक्) डर के मारे काँपना । सकपकाहट ।

सकार-ना—स० (सकार<स्वीकार) प्रे० सकरवाना ।

सकुच-ना—अ० (संकोच से क्रिया ।) सकुचाना ।

सजा-ना—अ० (√सज्—<'सजा' क्रि० स० साजना । प्रे० सजवाना ।

सटक-ना—अ० (सटक-सरक से सम्बन्धित जान पड़ता है । सरक—√सृ)

सटकार-ना—स० (सांटी=छड़ी ।√सट्ट हिंसायाम)=छड़ी से मारना ।

सट-ना— अ० (सट<सक्त ?) क्रि० स० सटाना । सटवाना ।

सठिया-ना—अ० ('साठ' से नामधातु ।) अवस्था अधिक होने से बुद्धि क्षीण होना ।

सड़-ना—अ० (<सरण ?) क्रि० स० सड़ाना । प्रे० सड़वाना ।

सता-ना—स० (<संतापन । सं०√तप् ।)

सध-ना—अ० (सध>सिद्ध क्रि० स० सधाना । प्रे० सधवाना ।)

सनक-ना—अ० (सनक=सन+क । सन<स्वन्√स्वद् शब्दे ।)=पागलपन का लक्षण प्रकट होना । अधिक और अनर्गल बोलना । (शब्द प्रयोग) पागल का एक लक्षण है ।

सनसना-ना—अ० (सन>स्वन् । सन की द्विरुक्ति से ।)

सपना-ना—अ० (सपना से नामधातु ।√स्वप् शयने ।)

सपट-ना—अ० (सपट-सं√पृ० पालन पूरणयोः (क्रि० स० सपराना । पूरा करना ।

समझ-ना—अ० (समझ<सम्बुद्धि से क्रि० स० समझाना । प्रे० समझवाना ।)

समा ना—अ० (सम्—आप् व्याप्तौ) समाना=अन्दर व्याप्त होना ।

समेट-ना—स० (समेट=समा+एट<प्रत्यय । सिमटना अक० रूप ।)

सरक-ना—अ० (सरक√सृप् गतौ (जाना । रेंगना) <सटक । क्रि० स० सटकाना ।

सरसरा-ना—अ० (√सृ-गतौ ।)

सराह्-ना—स० (√शलाघ् कत्थने ।)

सरिया-ना—स० (सरणि) (√सृ-गतौ) के अनुसार रखना ।

सरख ना—अ० (स+रेख से सरेख ।)

सस्ता-ना—अ० (सस्ता से नामधातु ।)

सह-ना—अ०(<सहनं √सह् मर्षण ।)

सहम-ना—अ० (सहम फा०=भय ।)

सहला-ना—अ० (सहल अ०, फा०, । तु० सरल सं० ।)

साध-ना—स० (साधना से ।)

सान-ना—स० (व्यु० ?) क्रि० अ० सनना ।

सहल-ना—स० सञ्ज गतौ से ।)

साल-ना—स० साल<शल्य प्रा० सल्ल ।

सिल-ना—अ० (√सिव् तन्तु सन्ताने ।) (सीना) सीना का अक० सिलना ।
प्रे० सिलाना, सिलवाना । सियाना भी । सिलाई । सिलावट ।

सिकुड़-ना—अ० (स+√कुच् <संकुचनं ।)

सिटपिटा-ना—अ० (सिटपिट अनु० शब्द ?)

सिरा-ना, सेराना—अ० (सीर—शीत ?) प्रे० सिरवाना । सेरवाना ।

सिधार-ना—अ० (√सिध्+भार । √सिध् पहुँचना ।)

सिसक-ना—अ० (√सीत्कार के 'सीत्' में अन्तिम व्यञ्जन के लोप से ।
सिसकार <सीत्कार ।
'सी' 'सी' करना—अनुकारी शब्द भी हो सकता है ।
'सिसकी' से नामधातु । अन्य रूप—सुसकना, सुसकारना ।

सिहर-ना—अ० (सिहर<शिशिर से) ।

सिहा-ना—अ० (सिहा व्यु० ?)

सिंगार-ना—स० (सिंगार<शृंगार) ।

सी-ना—अ० (सी—√सिव् तन्तु सन्ताने) ।

सींच-ना—अ० (√सिच् सींचना । <सिंचनं ।)

सीख-ना—अ० (सीख √शिक्ष् विद्योपदाने सीखना)।
क्रि० स० सिखाना, सिखलाना। प्रे० सिखलाना, सिखलवाना।

सुड़क-ना—अ० ('सुड़' अनु० शब्द। सुड़ की द्विरुक्ति से) सुड़-सुड़ा-ना। सुड़काना, सुड़कवाना।

सुधार-ना—स० ('सुधार' से नामधातु।) प्रे० सुधरवाना।

सुन-ना—अ० (सुन–√श्रु श्रवणे। सुन <स्वन से भी सम्बन्धित हो सकता है।) सुनाना। सुनवाना।

सुमिर-ना—स० (<स्मरण √स्मृ चिन्तायाम्)। स्मरण करना।

सुरसुरा-ना—अ० (सुर√सृ। सुर की आवृत्ति से सुरसुर।
=कीड़ों आदि का रेंगना।

सुलग-ना—अ० (सु+लग)। अच्छी तरह लगना (आग का)।
क्रि० स० सुलगाना। प्रे० सुलगवाना।

सुलझ-ना—अ० (सु+लझ <लब्ध) ?

सुस्ता-ना—अ० (सुस्त फा० से नामधातु। 'सुस्त' क्या स्वस्थ से सम्बन्धित है ?)

सुहा-ना—अ० (सुह–√शुभ्। शोभन)। सोहाना भी। सोहा<शोभा।
वि० सुहावना। सुहावना।

सूँघ-ना—स० (सूँघ √शिघ्र आघ्राणे)।

सूख-ना—अ० (√शुष् शोषणे। सूख <शुष्क)।
क्रि० स० सुखाना। प्रे० सुखवाना।

सूज-ना—अ० (सूज <शोथ फा० सोज)।

सूझ-ना—अ० (<सुध्या–सुज्झ ?) क्रि० स० सुझाना। सुझाव।

सूत-ना—अ० (<स्वपनं–√स्वप्)।

सूल-ना—अ० (सूल<शूल)।

सेंक-ना—स० (श्रेपण धा० सा०)। क्रि० अ० सिंकना।

सेंत-ना—स० (सेंत<संचित ?)

सोख-ना—स० (<शोषण)।

सोच-ना—स० (<शोचन)।

सोध-ना—स० (<शोधनं)।

सो-ना—अ० (स्वप् शयने)। क्रि० स० सुलाना। प्रे० सुलवाना।

सौंच-ना—स० (<शौच से)। प्रे० सौंचाना।

सौंप-ना—स० (सौंप <सम्+अर्प। समर्पण।

ह

हुंकड़ना—अ० (हाँक+ड़ <हु+कृ)=दर्प के या अकड़ के साथ बोलना।

हुंकार-ना—स० (हुंकार <हुंकार)।

हँस-ना—अ० (√हस् <हसनं)। क्रि० स० हँसाना। प्रे० हँसवाना। हँसी।

हकबका-ना—अ० (हका बक्का से हक<हिक्का बक<वाक्)।

हकला-ना—अ० (हक√हिक्क अव्यक्त शब्द अस्पष्ट शब्द बोलना, छीकना)। हक+ल का आगम।

हट-ना—अ० (हट<घट्ट)। हटाना। हटवाना।

हटक-ना—स० (हट+क)। इसका अर्थ मना करना भी होता है।

हग-ना—अ० (हग व्यु० ?) श० स० के अनुसार अग ? पर दोनों में अर्थभेद हैं। प्रे० हगाना, हगवाना।

हड़प-ना—स० (हड़+प) हड़ √हृ हरणे। हड़<हर।

हड़बड़ा-ना—अ० (हड़बड़-व्यु० हड़ √हृ बड़ √वद् ?)

हड़हड़ा-ना—स० (हड़हड़—अनु० शब्द)।

हथिया-ना—स० (हाथ से नामधातु)।

हदक-ना—अ० (हदक ?)

हर-ना—स० (<हरणं √हृ हरणे।)

हरखा-ना—अ० (<हर्ष √हृष्)। मूर्धन्य ष का ख उच्चारण भी होने के कारण हरखाना रूप भी।

हल-ना—(हिलना का रूपान्तर)। क्रि० अ० √हयस्—जाना, हिलाना <हासनं।

हलरा-ना—स० लहर का वर्ण विपर्यय हलराना—लहराना। हलर हल+र से निकल सकता है। हलराना—हाथ पर या पालने पर बच्चे को हिलाना।

हाँफ-ना—अ० (हाँफ—वाष्प ? अथवा हफ़हफ़ अनु० शब्द।)

हिचक-ना—अ० (हिचक<हिक्का) = हिचकी लेना। हिचकी। हिचकिचाना।

हिल-ना—अ० (√हिल् भावकरणे। हलनं।) क्रि॰ स० हिलाना। प्रे० हिलवाना।

हिलोर-ना—स० (हिलोर<हिल्लोल से।)

हींस-ना—अ० (<हेषनं √हेष् अव्यक्त शब्दे—हिनहिनाना, दहाड़ना।)

हुमक-ना—अ० (हुमक ?)=पैर से जोर लगाना।

हुलस-ना—अ० (हुलास<हुलास<उल्लास। क्रि० स०—हुलसाना।

हूँक-ना—अ० (हूँक—हूँ+क। हूँ अनु० शब्द)=गाय की पीड़ा व्यक्त करना।

हूक-ना—अ० (हू+क। कु+हूक।) कुहूकना क्रिया के कु के लोप से हूक बना है क्या ? हूक—मन का दुःख।

हेर-ना—स० हेर खोजने के अर्थ मे 'अहेर' के अ के लोप से बना जान पड़ता है।

हेल-ना—स० (हेल<हेला क्रीडना)=पानी में घुसना।

हो-ना—अ० (हो<भू)। होनी।

हौंक-ना—अ० (हौं—हवन से कदाचित् निकला है। धौंक के रूप साम्य पर हौंक। धौं—धूम—हौं—हवन से अथवा हवा से ?)=पंखे से हवा कर आग सुलगाना।

● ●

संस्कृत धातुओं का हिंदी में प्रयोग

प्रायः संस्कृत धातुओं का धातुरूप में हिन्दी में प्रयोग नहीं होता। प्रायः गद्य-लेखन में और बोलचाल मे सस्कृत संज्ञाओं में–ना के योग से क्रिया नहीं बनायी जाती। पद्य-रचना में कभी-कभी ना के योग से संस्कृत शब्दों से क्रियायें बना ली जाती है। मोहना, त्यागना, पूजना आदि कुछ क्रियायें चलती हैं। प्रायः संस्कृत संज्ञाओं के बाद करना, पड़ना, लगना, होना आदि सहायक क्रियायें जोड़ी जाती हैं और तब उनका प्रयोग होता है। हिन्दी के व्रजभाषा, अवधी आदि के पुराने कवियों ने संस्कृत शब्दों से हिन्दी के कालबोधक अथवा अवस्था बोधक प्रत्ययो के योग से संकड़ों ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया है। तुलसीदास के मानस के प्रारम्भिक अंश से ही नीचे कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

वंदौं—बंदौ गुरु पद पदुम परागा।
पेखिय—मज्जन फल पेखिय ततकाला।
परिहरही—पर अकाज लागि तनु परिहरही।
प्रनवौ—प्रनि प्रनवौं पृथुराज समाना।
बिनवौ—बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही।
छमिहहिं—छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।
भाषा—भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा।
बरनहिं—बुध बरनहिं हरि जस अस जानी।
अनुकूला—सो उमेस मोहिं पर अनुकूला।
नमामी—रिपुसूदन पद कमल नमामी।
अनुभवहिं—ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा।
अवलोकि—मुनि अवलोकि सुचित चख चाही।
सनमाने—ते भरतहि भेटे सनमाने।
प्रकासा—अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

खड़ी बोली हिन्दी में बदना है, पेखता है, परिहरना, प्रनवना, बिनवना, छमना, भाषना, बर्णनते हैं, अनुकूलो, अनुभवना, नमामि, अवलोकना, सन्माना, प्रकासना आदि का प्रयोग गद्य में नहीं होता और यह हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप नहीं है। किन्तु कुछ कवियों ने पद्य में कभी-कभी ऐसी क्रियाओं का

प्रयोग किया है। प्रिय प्रवास में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में है। किन्तु श्री मैथिली शरण गुप्त, पन्त, निराला और बच्चन आदि प्रसिद्ध कवियों ने भी कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग किये हैं। आधुनिक कवियों में ऐसे प्रयोग विरल हैं। विचारणीय है कि क्या ऐसी क्रियायें हिन्दी ले ले और अपनी क्रियाशक्ति में वृद्धि करे ? पद्य में जब ऐसे प्रयोग चल पड़ते हैं और सह्य हो जाते हैं तो उसका प्रभाव गद्य पर भी पड़ सकता है। पिछले दशक में आंचलिक कथाकारों के प्रयोग से सैंकड़ों क्रियाये जनपदी बोलियों से कथा-साहित्य मे आयी हैं। इसी प्रकार कवियों के प्रभुत्व और प्रताप से कुछ संस्कृत संज्ञाओं से–ना के योग से अथवा अवस्था-बोधक प्रत्ययों के योग से बनी क्रियायें भी आयी हैं।

नीचे हम ऐसी क्रियाओं की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनके–ना रहित अंश को धातु माना जा सकता है, क्योंकि इनसे हिन्दी में धातु का काम लिया जाता है और अनेक आधुनिक कवियों ने इनका धातुवत् प्रयोग भी किया है।[१]

अधिकाना, अनुकूलना, अनुभवना, अभिसारना, अर्चना, अर्पाना, अवलोकना, अवगाहना, अवरेखना, अवधारना, अवहेलना, अवरोधना, आराधना, आरम्भना, आरोपना, आलाप-ना, आलिंगना, आलोड़ना, आनन्दना, उच्चारना, उद्धारना, उद्घाटना, उपचारना, उन्मूलना, उल्लंघना, उल्लासना, उद्भासना, उदासना, कूजना, कोपना, ग्रसना, जल्पना, झंकार-ना, तपना, तर्कना, तर्जना, त्यागना, दलना, दर्पना, दर्शाना, दोहना, दीपना, द्रवना, निन्दना, निपीड़ना, निर्धाना, निवसना, निस्तारना, भावना, भंडना, मापना, परिहारना, प्रकटना, प्रकाशना, प्रचारना, प्रतिपालना, प्रबोधना, वारना, विचरना, विचलना, विनाशना, विलम्बना, विलगाना, विदरना, विमोहना, विलोकना, विलोपना, विवाहना, विस्तारना, व्यापना, संकल्पना, संकोचना, संहरना, संचारना, संतापना, सन्तोषना, समर्पना, सरना, स्थापना, शिथिलाना, शूलना, शृंगारना, शोधना, शोभना, हुंकारना, होमना।

१. अवस्था बोधक प्रत्ययों से अभिप्राय है—ए, ओ, ऊँ, आ आदि चल् से चले, चलो चलूँ, चला आदि।

काल बोधक प्रत्यय है, था, गा।

संस्कृत धातुओं का हिंदी में प्रयोग

प्रायः संस्कृत धातुओं का धातुरूप मे हिन्दी में प्रयोग नही होता। प्रायः गद्य-लेखन मे और बोलचाल में संस्कृत संज्ञाओं में-ना के योग से क्रिया नही बनायी जाती। पद्य-रचना मे कभी-कभी ना के योग से संस्कृत शब्दों से क्रियायें बना ली जाती है। मोहना, त्यागना, पूजना आदि कुछ क्रियायें चलती हैं। प्रायः संस्कृत संज्ञाओं के बाद करना, पड़ना, लगना, होना आदि सहायक क्रियायें जोड़ी जाती हैं और तब उनका प्रयोग होता है। हिन्दी के ब्रजभाषा, अवधी आदि के पुराने कवियों ने संस्कृत शब्दों में हिन्दी के कालबोधक अथवा अवस्था बोधक प्रत्ययों के योग से सैकड़ों ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया है। तुलसीदास के *मानस* के आरम्भिक अंश से ही नीचे कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

वंदी—बंदी गुरु पद पदुम परागा।
पेखिय—मज्जन फल पेखिय ततकाला।
परिहरही—पर अकाज लागे तनु परिहरही।
प्रनवौ—प्रनि प्रनवौं पृथुराज समाना।
बिनवौ—बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही।
छमिहहि—छमिहहि सज्जन मोर ढिठाई।
भापा—भजन प्रभाउ भांति बहु भापा।
बरनहि—बुध बरनहि हरि जस अस जानी।
अनुकूला—सो उमेस मोहि पर अनुकूला।
नमामी—रिपुसूदन पद कमल नमामी।
अनुभवहि—ब्रह्मसुखहि अनुभवहि अनूपा।
अवलोकि—सुनि अवलोकि सुचित चख चाही।
सनमाने—ते भरतहि भेटे सनमाने।
प्रकासा—अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

खडी बोली हिन्दी में वढ़ता हूँ, पेखता हूँ, परिहरना, प्रनवना, विनयना, *क्षमना, भापना, वर्णनते हैं, अनुकूलो, अनुभवना, नमामि, अवलोकना, सन्माना,* प्रकाशना आदि का प्रयोग गद्य में नही होता और यह हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नही है। किन्तु कुछ कवियों ने पद्य में कभी-कभी ऐसी क्रियाओं का

प्रयोग किया है। प्रिय प्रवास में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में है। किन्तु श्री मैथिली शरण गुप्त, पन्त, निराला और बचन आदि प्रसिद्ध कवियों ने भी कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग किये हैं। आधुनिक कवियों में ऐसे प्रयोग विरल हैं। विचारणीय है कि क्या ऐसी क्रियायें हिन्दी ले ले और अपनी क्रियाशक्ति में वृद्धि करे ? पद्य में जब ऐसे प्रयोग चल पड़ते हैं और सह्य हो जाते हैं तो उसका प्रभाव गद्य पर भी पड़ सकता है। पिछले दशक में आंचलिक कथाकारों के प्रयोग से सैकड़ों क्रियायें जनपदी बोलियों से कथा-साहित्य में आयी हैं। इसी प्रकार कवियों के प्रभुत्व और प्रताप से कुछ संस्कृत संज्ञाओं से–ना के योग से अथवा अवस्था-बोधक प्रत्ययों के योग से बनी क्रियायें भी आयी हैं।

नीचे हम ऐसी क्रियाओं की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनके–ना रहित अंश को धातु माना जा सकता है, क्योंकि इनसे हिन्दी में धातु का काम लिया जाता है और अनेक आधुनिक कवियों ने इनका धातुवत् प्रयोग भी किया है।[१]

अधिकाना, अनुकूलना, अनुभवना, अभिसारना, अर्थना, अर्थाना, अवलोकना, अवगाहना, अवरेखना, अवधारना, अवहेलना, अवरोधना, आराधना, आरम्भना, आरोपना, आलाप-ना, आलिंगना, आलोड़ना, आनन्दना, उच्चारना, उद्धारना, उद्घाटना, उपचारना, उन्मूलना, उल्लंघना, उल्लासना, उद्वासना, उदासना, कूजना, कोपना, ग्रसना, जल्पना, झंकार-ना, तपना, तर्कना, तर्जना, त्यागना, दलना, दर्पना, दर्शाना, दोहना, दीपना, द्रवना, निन्दना, निपीड़ना, निर्धाना, निवसना, निस्तारना, भापना, भड़ना, मापना, परिहारना, प्रकटना, प्रकाशना, प्रचारना, प्रतिपालना, प्रबोधना, वारना, विचरना, विचलना, विनाशना, विलम्बना, विलगाना, विदरना, विमोहना, विलोकना, विलोपना, विवाहना, विस्तारना, व्यापना, संकल्पना, संकोचना, संहरना, संचारना, संतापना, सन्तोपना, समर्पना, सवना, साधना, शिथिलाना, शूलना, शृंगारना, शोधना, शोभना, हुंकारना, होमना।

---

१. अवस्था बोधक प्रत्ययों से अभिप्राय है—ए, ओ, ऊँ, आ आदि चल् से चले, चलो चलूँ, चला आदि।

काल बोधक प्रत्यय है, था, गा।